UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186456

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H631 V99 K Accession No. G.H. 2855

Author व्यास, नारायण दुलीचन्द

Title खेती के साधन १९५९

This book should be returned on or before the date last marked below.

खेती के साधन

—खेती के तरीकों की विस्तृत जानकारी देनेवाली पुस्तक—

लेखक

डा० नारायण दुलीचंद व्यास

१९५९

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

Checked 1963

पहली बार : १९५९
मूल्य
एक रुपया पच्चीस नये पैसे

Checked 1969

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

देश की वर्तमान समस्याओं में खेती की समस्या सर्वोपरि है। जनता और सरकार दोनों का ध्यान जितना आज इस समस्या पर केंद्रित है, उतना शायद ही अन्य किसी समस्या पर हो। कृषि की उन्नति के लिए जहां अन्य सुधारों की आवश्यकता है, वहां प्रमुख आवश्यकता इस बात की है कि हमारे किसानों को खेती के साधनों की संपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी हो। इस जानकारी के अभाव में वे प्राप्त हो सकनेवाले साधनों के उपयोग से भी वंचित रह जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में खेती के साधनों की जानकारी विस्तार से दी गई है। लेखक प्रसिद्ध कृषि-विशेषज्ञ हैं, अतः पुस्तक की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। 'मंडल' से लेखक की 'कृषि-ज्ञान-कोष', 'अन्नों की खेती', 'फलों की खेती', 'सागभाजी की खेती', 'तिलहन की खेती', 'दलहन की खेती' तथा 'रोक फसलों की खेती' पुस्तकें इससे पूर्व प्रकाशित हुई हैं, जिनकी लोकप्रियता इसीसे सिद्ध होती है कि कुछ पुस्तकों के एक के बाद और भी संस्करण हुए हैं।

आशा है, लेखक की अन्य पुस्तकों की भांति यह पुस्तक भी पाठकों को उपयोगी लगेगी।

—मंत्री

दो शब्द

किसी भी कार्य अथवा व्यवसाय की सफलता साधनों की उपलब्धता पर निर्भर है। उसी भांति खेती के कार्य में भी साधनों की आवश्यकता होती है। ऐसे साधन कौन-कौन-से हैं, उन्हींका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, ताकि हमारे नवयुवक जो कृषि-कला जैसे स्वतंत्र धंधे को अपनाना चाहें, इन साधनों की उचित व्यवस्था कर सफलता प्राप्त कर सकें।

५, माघ शुक्ल २०१५
दिनांक १२-२-५९

—नारायण दुलीचंद व्यास

विषय-सूची

१. प्राकृतिक साधन **१–२९**

१. प्रकाश ३

२. धूप ३

३. जलवायु ४–९

(क) तापमान, गर्मी, सर्दी, तुषार (पाला) ५; (ख) हवा, आंधी, तूफान ६; (ग) जल, वर्षा, धूंधल या कोहरा, ओस, आर्द्रता ६।

४. भूमि ९

५. फसल के शत्रु और मित्र १३

२. मनुष्यकृत साधन **३१–९६**

१. शिक्षण ३३

२. खेती की विभिन्न प्रणालियां ३४–३६

(क) व्यक्तिगत ३४; (ख) सहकारी ३४; (ग) सामूहिक ३४; (घ) भू-प्रधान ३५; (ङ) श्रम-प्रधान ३५; (च) मुख्य फसली ३५; (छ) सागभाजी की खेती ३५; (ज) फलों की खेती ३५; (झ) मिश्रित खेती ३६।

३. जुताई ३६

४. खाद ४८

५. फसलों का हेर-फेर और मिश्रण ६८

६. बीज और बोआई ७१

७. निंदाई व निराई ७५

८. सिंचाई ७७

९. फसल की तैयारी ८८

१०. वितरण और व्यवसाय ९३

खेती के साधन

१. प्राकृतिक साधन

१. प्रकाश
२. धूप
३. जलवायु :
   (क) तापमान, गर्मी, सर्दी, तुषार (पाला)
   (ख) हवा, आंधी, तूफान
   (ग) जल, वर्षा, ओला, धूंधल या कोहरा, ओस, आर्द्रता
४. भूमि
५. फसल के शत्रु और मित्र

: १ :

प्राकृतिक साधन

१—प्रकाश

वनस्पति के लिए प्रकाश अत्यंत आवश्यक है। पाठकों में से कई ने देखा होगा कि यदि हम किसी खिड़की में किसी पौधे का गमला रख दें तो थोड़े दिनों में वह पौधा खिड़की के प्रकाश की ओर झुक जाता है। यह भी देखा होगा कि यदि खेतों में घने पौधे हों तो उनमें प्रकाश प्राप्त करने की प्रतियोगिता लग जाती है। वे अच्छे स्वस्थ न होकर पतले और लंबे हो जाते हैं। जहां खेतों में जल्दी बढ़नेवाले घास-पात जम जाते हैं तो मुख्य फसल के पौधों को दबा देते हैं जिससे उन्हें पूरा प्रकाश नहीं मिलता और वे कमज़ोर हो जाते हैं। प्रकाश में ही पौधों का भोजन उनके पत्ते तथा हरे अंगों में तैयार होता है, इसलिए स्वस्थ बाढ़ के लिए प्रकाश का पहुंचाना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए खेतों में आवश्यकता से अधिक से पौधे नहीं होने देना चाहिए और घास-पात को तो जितना जल्दी हो सके निकलवा देना चाहिए।

२—धूप

सूर्य के प्रकाश को हम यहां धूप कहेंगे। कुछ ही वनस्पतियां ऐसी हैं जो धूप में अच्छी नहीं पनपती परंतु कृषि की तो सभी फसलें ऐसी हैं जिन्हें धूप लाभदायक होती है। बहुत तेज़ धूप किसी-किसीको हानि करती है। वह पौधों के पत्तों द्वारा पानी उड़ा देती है। जिस परिमाण में पौधों से पानी उड़ता है उसी परिमाण में वे भूमि से नहीं ले पाते। यही कारण है कि कई फसलों के पौधे, विशेषतः चौड़े पत्तेवाली के पौधे, धूप से संध्या तक मुर्झा जाते

हैं; परंतु रातभर में फिर पानी लेकर सुबह तक स्वस्थ हो जाते हैं। धूप का अभाव हमें वर्षा ऋतु में होनेवाली फसलों पर बहुत जल्दी दिखलाई देता है। मुख्यतः मक्का की फसल ऐसी है कि जिसे यदि समय-समय पर धूप मिलती रहे तो बहुत अधिक उपज देती है। धूप पौधों को भूमि से खाद्य वस्तु प्राप्त करने तथा उन्हें पौधों के उपयोगार्थ बनाने में भी सहायक होती है। धूप से पौधों में से पानी अधिक उड़ता है और उसकी पूर्ति के लिए जब भूमि में से पानी का खिंचाव होता है तो उसके साथ-साथ द्रवित खाद्य पदार्थ पौधों में पहुंच जाते हैं। धूप से पौधों में "फोटो सिन्थेसिस" नाम की क्रिया अच्छी होती है जिसके द्वारा पौधों के हरे अंगों में पौधों के लिए भोजन बनता है।

धूप पर मनुष्यों का पूर्ण रूप से नियंत्रण खेतों में तो नहीं रह सकता परंतु नर्सरी में पौधों पर छाया करके अधिक धूप के समय में बचा सकते हैं अथवा जब रात्रि को भी रोशनी देने की आवश्यकता पड़े तो बिजली की रोशनी से प्रकाश दे सकते हैं। हां, जहां धूप अधिक पड़ती है वहां धूप सहनेवाली फसलें लगानी चाहिए।

३—जलवायु

जलवायु के अंतर्गत हमें निम्नलिखित विषयों पर विचार करना होगा, जिनके ऊपर फसलों का चुनाव, उनकी बाढ़ तथा खेतो के प्रकारों का चुनाव निर्भर है।

(क) तापमान, गर्मी, सर्दी, तुषार (पाला)

(ख) हवा, आंधी, तूफान

(ग) जल वर्षा, ओला, धूंधल या कोहरा, ओस, आर्द्रता

तापमान—तापमान से हमारा अभिप्राय गर्मी-सर्दी के नाप से है। यह नाप एक यंत्र द्वारा होता है जिसे "थर्मामीटर" या "तापमापी" यंत्र कहेंगे। जलवायु की रिपोर्ट में जो तापमान दिया जाता है वह 'फेहरनहीट'[1] मान

---

[1] १९५७ से यह सेंटीग्रेड में दिया जाने लगा है।

कहा जाता है। प्राणियों का बुखार भी इसी यंत्र से देखा जाता है। इस यंत्र के सिवाय एक और यंत्र होता है जिसे 'सेंटीग्रेड' तापमापी कहेंगे। इसका उपयोग अधिकतर रसायनशालाओं में होता है। आवश्यकता पड़ने पर एक के मान को दूसरे में निम्न सूत्रों से बदल सकते हैं—

फेहरनहीट को सेंटीग्रेड में बदलना—

$$\frac{(\text{डिग्री फेहरनहीट}-३२)\times ५}{९}=\text{डिग्री सेंटीग्रेड (°से०)}$$

सेंटीग्रेड के मान को फेहरनहीट में बदलना—

$$\frac{(\text{डिग्री सेंटीग्रेड}\times ९)}{५}+३२=\text{डिग्री फेहरनहीट (°फे०)}$$

तापमान का फसलों की बाढ़ पर बड़ा असर पड़ता है। एक सीमित तापमान में फसलें अच्छी बढ़ती हैं। बीज भी एक सीमित तापमान में ही अंकुराते हैं। उसके नीचे होने से अंकुराते ही नहीं और अधिक हो जाय तो अंकुर हो जायंगे पर जल्दी मर जायंगे। ८२° फे० से ९५° फे० (२७·८° से० से ३५° से०) तक का तापमान अंकुराने तथा बाढ़ के लिए अच्छा होता है। १२२° फे० (५०° से०) से ऊपर का तापमान ठीक नहीं होता और उसी भांति ५०° फे० (१०° से०) से कम भी अच्छा नहीं होता। पौधों की बाढ़ या बीजों के अंकुरने के विचार से तापमान न्यूनाधिक, सर्वोत्तम अथवा न्यूनतम ऐसे तीन प्रकार का होता है और वे पृथक-पृथक जाति के बीज के लिए पृथक-पृथक होते हैं। शरद ऋतु में बोई जानेवाली फसलों के लिए जबतक तापमान नीचे न गिर जाय नहीं बोना चाहिए। यदि गेहूं ऊंचे तापमान में बोये जायं तो वे लंबे-लंबे अंकुर फेकेंगे जो स्वच्छ नहीं होंगे। उनकी मरण-संख्या विशेष होगी।

जब तापमान ३२° फे० (०° से०) से कम हो जाता है तो तुषार यानि पाला गिरने लगता है जिससे बहुत-सी फसलों के पौधे मर जाते हैं। चना, कपास, बैंगन, आलू आदि फसलों पर पाले का असर बहुत जल्दी होता है, गेहूं पर नहीं होता।

(ख) हवा, आंधी, तूफान—हवा की चाल एक यंत्र से नापी जाती है और उसे मील प्रति घंटा के हिसाब से लिखा जाता है।

जब हवा की चाल एक मील प्रति घंटा से कम होती है तो वातावरण शांत माना जाता है। जब वृक्षों के पत्ते खड़खड़ाने लगते हैं तो हवा की चाल अधिक-से-अधिक सात मील प्रति घंटा होगी। जब टहनियां हिलने लगें तो वह चाल अधिक-से-अधिक बारह मील की मानी जाती है। जब धूल उड़ने लगे तो अठारह मील तक की और छोटे वृक्ष हिलने लगें तो अधिक-से-अधिक चौबीस मील की चाल होगी। जब बड़ी डगालियां हिलने लगें तो हवा तेज है, ऐसा मानते हैं और उसकी अत्यधिक चाल ३८ मील की होगी। जब यह चाल ३९ से ५४ मील की हो जाती है तो उसे आंधी कहते हैं और जब पेड़ टूटने लगें तो ७५ मील की चालवाली तेज आंधी मानते हैं। इससे अधिक चाल की गणना तूफानों में होती है जिनसे घरों के छप्पर उड़ जाते हैं।

तेज हवा और आंधी से फसलों को हानि होती है। उससे पौधे ही नहीं गिरते बल्कि ज़मीन में से पानी भी बहुत उड़ जाता है। तेज हवा और आंधी से फलवाले वृक्षों के फल गिर जाते हैं। जहां तेज़ हवा या आंधी के बहने की सम्भावना रहती है वहां ऐसे बागर या घेरा वृक्षों को लगाना चाहिए जिससे उसका असर कम हो जाय। ऐसे वृक्षों की कतारों को अंग्रेजी में "विडब्रेक" कहते हैं। जामुन की पेड़ के आड़ में यदि आम के वृक्ष हों तो आम कम गिरते हैं। जामुन के पेड़ों को "विडब्रेक" वाले पेड़ कहेंगे।

(ग) जल, वर्षा, ओला, धूंधल या कोहरा, ओस आर्द्रता—वनस्पति के लिए जल की कितनी आवश्यकता है यह तो कृषक क्या मनुष्यमात्र जानते हैं। इसके अभाव में पौधे मर ही जाते हैं।

प्रकृति हमें जल वर्षा के रूप में देती है जिसे धरती संचय कर फसलों को देती है। जल का संचय खेतों में भूमि-कणों के साथ रहता है, जिसमें खाद्य-पदार्थ घुलते हैं और उनसे पौधों का पोषण होता है। भूमि-कणों के संचय से जो जल अधिक होता है तो वह या तो नीचे की तहों में चला जाता

है या बह जाता है। नीचे की तह में गये हुए जल का कुछ भाग कुएं खोदकर काम में लाया जाता है। बहनेवाले जल का कुछ भाग तालाब, पोखर आदि में इकट्ठा कर सिंचाई के काम में लाते हैं। जो जल नदियों द्वारा बहता है उसका भी कुछ भाग नहरों द्वारा सिंचाई के काम आता है। आवश्यकता पड़ने पर बांध भी बांधे जाते हैं। शेष जल समुद्र में चला जाता है।

वर्षा द्वारा गिरे हुए जल से कई लाभ होते हैं। एक तो भूमि में संचित होकर खाद्य-द्रव्य को पौधों को देता है। दूसरा, वायुमंडल से कुछ नाइट्रोजन के लवण अपने साथ लाता है। तीसरा, वृक्षों के पत्ते धो डालता, जिससे उनमें होनेवाली रासायनिक क्रियाएं अच्छी होती हैं और चौथा, वातावरण साफ और ठंडा कर देता है। परंतु यदि वर्षा अत्यधिक जोरों पर हो जाय तो वह हानिकर ही होती है। इससे मिट्टी कटकर बह जाती है और बाढ़ आने से जन, धन और पशुओं की हानि होती है। यदि जोरों की न हुई, लेकिन लगातार होती रही तो सिवाय धान की फसल के दूसरी को हानि पहुंचाता है। खेतों में पानी भर जाता है जिससे पौधों की जड़ों को हवा नहीं मिलती और पौधे मर जाते हैं। ऐसे पानी को यदि खेतों में से निकालने का सुभीता हो तो निकाल देना चाहिए।

वर्षा का असर खेतों की तैयारी पर भी बहुत पड़ता है। यदि लगातार वर्षा होती रहे तो खेतों की जुताई, निंदाई इत्यादि समय पर नहीं हो पाती।

वर्षा का नाप इंचों[1] में होता है। जब यह कहा जाय कि आज दो इंच वर्षा हुई तो उसका अर्थ यह होगा कि इतना पानी गिरा कि यदि उसे ठीक से रखा जाय तो भूमि पर दो इंच का तह हो जायगा।

कौन-कौन-सी फसलें कितनी वर्षा से अच्छी होती हैं यह निम्नलिखित सारणी से ज्ञात होगा।

---

[1] १९५७ से सेंटीमीटर और मिलीमीटर में गणना होती है। १ सेंटीमीटर = ·३९ इंच।

नाम जिंस	वर्षा (इंचों में)
बाजरा, मोठ, मूंग ज्वार चरी, छोटे धान	२० इंच तक
गेहूं, जौ, जुवार, बाजरा, धान, मक्का, दलहन व तिलहन की फसलें, कपास, बरसाती साग-भाजी गन्ना और फल	२० से ४० इंच
धान, गेहूं, मक्का, तिलहन, दलहन की कुछ फसलें, गन्ना, अधिकांश सागभाजी और फल	४० से ६० इंच
धान, पाट, गन्ना, तिलहन की कुछ फ़सलें, धान के बाद होनेवाली कुछ दलहन की फसलें, कुछ सागभाजी और फल	८० इंच से ऊपर

ओले—ओले पानी का ही एक रूप है। पानी के जम जाने से वे पत्थरों का-सा काम करते हैं। जब गिरते हैं तो विशेषत: चौड़े पत्तेवाली फसलें तो बरबाद हो जाती हैं। दूसरी फसलों को भी काफी हानि पहुंचाती है। इनसे खेतों की फसलों का बचाना तो असंभव है। मौसमी रिपोर्ट से यदि ओले गिरने की संभावना दीखे तो नर्सरी के पौधों पर तो टीन की छाया कर उन्हें बचा सकते हैं।

धूंधल—वर्षाऋतु के समाप्त होने पर सर्दी के दिनों में बहुधा वातावरण में कोहरा या धूंधल छा जाती है। यह भी पानी का एक रूप है। इससे भी पौधों को कुछ लाभ पहुंचता ही है।

ओस—वर्षा की समाप्ति के पश्चात् सर्दी के दिनों में सुबह यदि हम खेतों की मेढ़ों पर जो घासपात होता है उन्हें देखें तो उनपर जल-बिंदु दीखेंगे। ये फसल के पौधों पर भी होते हैं। इनसे पौधे धुल जाते हैं। कुछ जल पत्तों पर से टपककर भूमि में गिर जाता है और कुछ का वाष्पन हो जाता है। घास की बाढ़ बहुधा ओस से ही होती है।

आर्द्रता—हवा सूखी या नमी से भरी हुई होती है। नमी हवा में पानी के रहने से आती है। जितना अधिक पानी होगा उतनी हवा में नमी या आर्द्रता अधिक होगी। सूखी हवा पानी को सोखती है जिससे पौधे तथा फल-

फूल सूखने लगते हैं। तर या नमीदार हवा पौधों में नमी रखती है, जिससे उनकी बाढ़ अच्छी होती है। कुछ फसलों के लिए सूखी हवा की भी आवश्यकता होती है, जैसे कपास के फल फटने के लिए सूखी हवा अच्छी होती है।

४—भूमि

धरती माता—पाठकों में से कइयों ने सुना होगा कि धरती माता हमें अन्न देती है। यह माता ऐसी है जो प्रत्येक वनस्पति तथा अन्य जीवधारियों को भरपेट भोजन देती है। यदि इसके साथ उचित बर्ताव किया जाय तो यह किसीको भी निराश नहीं करती।

भारत एक ऐसा देश है जहांपर हमें सब प्रकार की मिट्टी मिल जाती है। पहाड़ी और मैदानी से लेकर रेगिस्तानी मिट्टी भी पाई जाती है। उर्वरा से लेकर ऐसी ऊसर धरती भी है, जिसमें घास का तिनका तक नहीं होता।

वैज्ञानिकों ने भारत की भूमि का अध्ययन किया और कर रहे हैं। उन्होंने कुछ वर्गीकरण किये हैं।

किसी वस्तु को पहचानने के लिए उसका नामकरण आवश्यक है और नाम से जाति, आकार अथवा गुण का कुछ बोध होता है। भूमि के भी ऐसे ही नाम रखे गये हैं जिनसे उसके गुण का भास हो जाता है। अधिकांश नाम निम्नलिखित हैं।

(१) **स्थायी या स्थानांतरित**—पहली मिट्टी वह मानी गई है जो चट्टानों के ऋतुक्षरण से बनी हो और उसी स्थान पर स्थित हो। इसके विपरीत स्थानांतरित भूमि वह है जिसका वायु या जल से स्थानांतरण हो गया हो अर्थात् एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर पहुंचा दी गई हो। मिट्टी के स्थानांतरण में अधिक हाथ नदियों का रहा है। गंगा-जैसी नदी हिमालय की मिट्टी को समुद्र तक पहुंचा देती है। अपेक्षाकृत स्थायी की अपेक्षा स्थानांतरित मिट्टी विशेष उर्वरा होती है, क्योंकि इसमें कई स्थानों के घुलनशील खाद्य पदार्थ तथा कार्बनिक पदार्थ आ जाते हैं।

(२) **रंग के आधार पर मिट्टी के नाम**—काली, लाल, पीली, भूरी

ऐसे मिट्टी के रंग के आधार पर नाम हैं। रंग में थोड़ा-बहुत अंतर होने से दूसरे कई नाम दिये जा सकते हैं, परंतु मोटे तौर पर तो हम चार ही नाम मुख्य मान सकते हैं। जिन्हें रंगों का ज्ञान है वे जानते हैं कि नीला और पीला मिला देने से हरा हो जाता है अथवा लाल और पीला मिलाने से नारंगी हो जाता है। इसी भांति खेत की भूमि में तो कई रंगों की मिट्टियों का मिश्रण होता है। इससे रंगों में भी हेर-फेर हो सकता है।

काली मिट्टी—भारतवर्ष में मध्यप्रदेश, बंबई, आंध्र, मद्रास तथा हैदराबाद के प्रदेशों में पाई जाती है। ऐसी भूमि कपास, जुवार, मूंगफली, गन्ना इत्यादि के लिए अच्छी होती है। खाद-प्राप्ति तथा सिंचाई की सुविधा हो तो कंद को छोड़कर सागभाजी और फल-फूल भी अच्छे होते हैं।

लाल मिट्टी—असाम, बंगाल, दक्षिण बिहार, उड़ीसा, पूर्वी मध्यप्रदेश तथा मद्रास में होती है। लाल मिट्टीवाले भागों में कहीं-कहीं पीली मिट्टी भी पाई जाती है।

भूरी मिट्टी—पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में पाई जाती है। चूंकि इन प्रदेशों में नदियों का विस्तार बहुत है। यहां की मिट्टी बहुधा जल-स्थानांतरित है। ऐसी मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है और प्रायः सब प्रकार की फसलें तथा फल-फूल और सागभाजी उपजाने योग्य होती हैं।

(३) **उर्वरा शक्ति के आधार पर मिट्टी का नामकरण**—मोटे तौर पर हम भूमि को उर्वरा या ऊसर भागों में बांट सकते हैं। उर्वरा भूमि के कई नाम हैं और एक ही प्रकार की उर्वरा भूमि के पृथक-पृथक स्थान में पृथक-पृथक नाम होते हैं। अनउपजाऊ भूमि को क्षारीय भूमि कहते हैं। उर्वरा भूमि का उर्वरापन बनाये रखने के लिए समयोचित जुताई तथा खाद का प्रयोग किया जाता है। ऊसर भूमि को सुधारने के लिए क्षारीयता की जाति तथा मात्रानुसार अलग-अलग प्रकार के प्रयत्न करने होते हैं। भूमि में क्षारीयता दो प्रकार की होती है। एक वह जिसमें पौधों के लिए उपयोगी लवणों की मात्रा इतनी अधिक हो कि भूमि के जल में उनका घोल जो बनता है, वह इतना गाढ़ा बन जाय कि पौधे खाद्य-पदार्थ प्राप्त न कर सकें और मर जायं। जिस भूमि में

१·५% घुलनशील लवण होंगे उनमें फसल नहीं होगी। दूसरी ऊसर भूमि ऐसी होती है जिसमें हानिकारक लवण होते हैं जैसे सोडियम कार्बोनेट। इस लवण की मात्रा यदि ०·२५ शतांश या अधिक हो तो उसमें फसल नहीं होगी। अंकुरित पौधे मर जायंगे। उनकी जड़ें काली होकर गल जायंगी।

ऊसर भूमि को सुधारने की युक्तियां

बहुधा कृषकों की लापरवाही से भूमि ऊसर हो जाती है। जहां सिंचाई नहरों से होती है वहां कृषक बहुत पानी देते हैं, जिससे भूगर्भ जल की सतह ऊपर आ जाती है, जिसके साथ लवण आकर मिट्टी में जमा हो जाते हैं। जहां सिंचाई का जल खारा हो वहां की मिट्टी भी ऊसर हो जाती है। जिस भूमि में से पानी का नितार या निकास ठीक न हो वह भी कुछ वर्षों में ऊसर हो जाती है। ऊसर भूमि को सुधारने के कुछ उपाय इस प्रकार हैं—

१. खेतों में बांध बांधकर उनमें पानी भर दिया जाय, ताकि लवण उसमें घुल जाय और वह पानी बहा दिया जाय।

२. वर्षा ऋतु के जल को खेतों में से खुली नालियों या बंद झिरझिरे नलों (जो खेतों में मिट्टी के नीचे इसी उद्देश्य से गाढ़े जाते हैं) के द्वारा बहा दिया जाय।

३. बोने के पहले खेतों को सींच दिया जाय, ताकि लवणों का घोल पतला हो जाय और अंकुरित बीज तथा छोटे पौधों को हानि नहीं पहुंचे।

४. रासायनिक पदार्थों द्वारा हानिकारक लवणों का असर निश्चित कर दिया जाय। लगभग साठ-सत्तर मन कैलशियम सलफेट प्रति एकड़ डालने से सोडियम कार्बोनेट, जो बहुत हानिकारक होता है, उसका और कैलशियम सलफेट का मेल होने से सोडियम सलफेट और कैलशियम कार्बोनेट बन जाते हैं। इनमें से दूसरा तो लाभप्रद होता है। पहला सोडियम कार्बोनेट की अपेक्षा कम हानिकारक होता है।

५. जहां ऐसी युक्तियां कारगर न हों वहां धान, बरसीम, शलजम जैसी

फसलें बोना चाहिए, क्योंकि इनमें क्षारीयता सहन करने की शक्ति होती है।

(४) **अम्लदार मिट्टी**—उर्वरा भूमि कुछ ऐसी होती है जिनमें अम्ल की अधिकता से कुछ फसलें नहीं हो पातीं—विशेषत:दलहन की फसलें। अम्लदार मिट्टी का अम्ल चूने से शांत किया जा सकता है। कृषि-रसायनशाला में जांच कराने से पता लग जाता है कि किस मिट्टी में कितना चूना डालना चाहिए। जहां ऐसी सुविधा न हो वहां दस-पंद्रह मन बुझाया हुआ चूना डालकर देखना चाहिए कि उससे लाभ हुआ या नहीं। यदि चूना कम जंचे तो और डालना चाहिए।

जिस मिट्टी में अम्ल और क्षार बुझे हुए होते हैं, उसमें सब प्रकार की फ़सलें हो जाती हैं, यदि वर्षा या पाला जैसी प्राकृतिक बातें प्रतिकूल न हों।

पी० एच०—यह सांकेतिक अंक १ से १४ तक होते हैं। वैज्ञानिक रीति से जांच करने पर भूमि इनमें से किसी अंक की मिलेगी। यदि उसका अंक ७ आ जाय तो यह मिट्टी पूर्ण बुझी हुई मानी जायगी। जब अंक ७ से कम आते हैं तो उस मिट्टी की तासीर अम्ल की ओर होगी। १ पी० एच० वाली पूरी अम्ली और १४ पी० एच० वाली पूरी क्षारीय होगी। जिस भूमि का पी० एच० ९ से ऊपर हो जाय उसमें कोई फसल नहीं होगी। ६ से कम पी० एच० वाली भूमि में आलू, धान, पाट, इत्यादि फसलें हो जायंगी। उधर ८ वाली में धान, बरसीम, शलजम जैसी फसलें हो जायंगी। ७ पी० एच० के लगभगवाली भूमि सब फसलों के लिए ठीक होती है।

(५) मिट्टी के कणों के अकारानुसार भी मिट्टी का वर्गीकरण किया जा सकता है। ऐसे वर्गीकरण में भूमि के पांच[1] नाम होते हैं, जैसे मटियार, मटियार-दुमट, दुमट, बलुआ-दुमट और बलुआ। जिस मिट्टी में ८० शतांश से अधिक बालू हो वह बलुआ होगी और जिसमें २० शतांश से कम बालू होगी उसे मटियार कहेंगे। मटियार-दुमट में २० से ४० शतांश बालू होगी।

---

[1] कृषि-ज्ञान-कोष १९५५, पृष्ठ ३४

दुमट में ४० से ६० शतांश और बलुआ-दुमट में ६० से ८० शतांश बालू होगी।

उपर्युक्त पांच प्रकार के वर्गीकरण के सिवाय एक छठी रीति और भी है। इसमें विशेष नामों के आधार पर वर्गीकरण होता है। साधारणतः ऐसे नाम निम्नलिखित पाये जाते हैं।

जलोढ़ या कछार—जो नदियों के जल के साथ आकर बनी हो।

दियर, दियारा, खादड़, सैलाबी—जिस भूमि पर नदी का पानी फिरता हो।

गहुवां या बाड़ा—गांव के निकट की उपजाऊ भूमि।

बरानी, मालेतरू या गैरआबपाश—बस्ती से दूर, जिसमें बिना सिंचाई के फसलें लेते हैं।

नहरी—जिसकी सिंचाई नहरों से होती हो।

चाही—जिसकी सिंचाई कुओं से होती हो।

आवी—तालाबों से सींची जानेवाली।

रेहली—जिसमें रेह अधिक हो।

बधिया—जिन खेतों में बरसात का पानी मेढ़ बांधकर रोका जाता हो।

उपर्युक्त नामों से मिट्टी की बनावट, उसका स्थान तथा सिंचाई की रीति का ज्ञान होता है। कुछ नाम ऐसे हैं जिनसे भूमि की भौतिक स्थिति तथा उसके गुण का भी पता लग जाता है। जैसे पंजाब और उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भागों में **डाकर, रसौली** और **भूर, बलुआ** इत्यादि नाम हैं। इनमें से पहली महीन कणवाली और आखिरी मोटे कणोंवाली होती है। उसी भांति उनका उर्वरापन भी होता है। बुंदेलखंड की तरफ ऐसी मिट्टी के नाम **मांड, काबर, रांकड़** और मध्यप्रदेश की तरफ **काली अव्वल, काली दोयम, कन्हार मोरंड** और **रांकड़** हैं।

५—फसल के शत्रु और मित्र

प्राकृतिक देन या साधन में पांचवीं देन में फसल के शत्रु या मित्रों की

गणना होगी।

जबतक फसल कटकर घर में नहीं आ जाय तबतक कृषकों के पीछे अनेक बाधाएं लगी रहती हैं। यदि वर्षा समयानुकूल हो जाय और फसल आंधी, ओले या तुषार से बच जाय तो भी कुछ शत्रु ऐसे हैं जो फसलों को हानि पहुंचाने में नहीं चूकते।

फसलों के शत्रुओं को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं।

(१) आवश्यकता से अधिक उसी फसल के पौधे।

(२) खेतों में घास-पात की उत्पत्ति।

(३) अमरलता, बांझी अगिया, ठोकरा इत्यादि घातक पौधे।

(४) कुछ मनुष्य, जिन्हें खेत में से फसल चुराना अथवा उनमें पशुओं को चरा देना साधारण-सी बात जंचती है।

(५) पालतू और जंगली पशु।

(६) पक्षी।

(७) कीट।

(८) व्याधियां।

(१) **आवश्यकता से अधिक पौधे**—किसी भी स्थान में आवश्यकता से अधिक पौधे होने से उनमें खाद तथा पानी के लिए प्रतिद्वंद्विता हो जाती है। खाद तथा पानी के बंटवारे से पौधे पूरी बाढ़ नहीं पा सकते। इसके सिवाय, जैसाकि पहले बताया जा चुका है, पौधों को पूरा-पूरा प्रकाश नहीं मिलता, इससे भी वे स्वस्थ नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में आवश्यकता से अधिक पौधे एक-दूसरे के शत्रु ही होंगे, सो अधिक पौधे नहीं होने देना चाहिए।

(२) **खेतों में घासपात की उत्पत्ति**—जिस प्रकार आवश्यकता से अधिक पौधे हानिकारक होते हैं, उसी भांति घसपात भी हानिकर होते हैं। ये मुख्य जाति के पौधों की बाढ़ को रोकते हैं। उनके भोजन तथा जल में हिस्सा बंटाते हैं और कीट इत्यादि को शरण देते हैं। इसलिए प्रयत्न यह होना चाहिए कि घासपात जमने हीनहीं पायें। निंदाई द्वारा उन्हें नष्ट करते र हना चाहिए।

(३) **घातक पौधे**— अगिया जैसा पौधा जुवार में लग जाता है और

पौधों की जड़ों से अपना पोषण करता है। इसके लग जाने से जुवार में भुट्टे निकलने ही नहीं पाते और जो निकलते हैं वे बहुत कमज़ोर हो जाते हैं। इसी भांति तंबाकू में ठोकरा लग जाता है। अमरलता और बांझी पेड़ों पर लग जाती है और उनसे अपना पोषण कर उन्हें मार देती है। इसलिए घातक पौधों को पनपने नहीं देना चाहिए।

अगिया फ्लेम थ्रोअर्स[1] से जलाया जा सकता है। ठोकरा उखाड़ा जा सकता है। अमरलता और बांझी पेड़ों पर से अलग कर दी जा सकती है।

(४) **मनुष्य**—परमात्मा ने मनुष्यों को बुद्धि, हाथ-पैर और शक्ति इस लिए दी है कि वे अपनी जीविका के लिए उचित मार्ग से परिश्रम द्वारा कमा सकें, परंतु कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें घास, फसल इत्यादि की चोरी साधारण-सी बात जंचती है। चरागाह के घेरे तोड़कर ढोर चराना, खेतों में ढोर छोड़ देना, पड़ोसी के खेत से हरी तथा सूखी फसल चुराना, यद्यपि उनके खेत में भी वही फसल खड़ी हो, इत्यादि कार्य करने में तनिक भी हिचहिचाहट नहीं होती। वे यह भी जानते हैं कि उनके खेत में भी ऐसी क्रिया करनेवाले दूसरे लोग होंगे। कितने दुःख की बात है कि कुछ लोगों को सीधी-सच्ची राह से कमाना नहीं आता। ऐसे दुष्ट प्रकृतिवाले मनुष्यों से बचने के लिए सिवाय रखवाले के कोई उपाय नहीं दिखता।

(५) **पालतू और जंगली पशु**—पालतू और जंगली पशु कभी-कभी खेतों में घुसकर काफी हानि पहुंचाते हैं। ऐसे पशुओं से बचाव कांटेदार तार के घेरे से अथवा रखवालों से हो सकता है।

बंदर-जैसे जानवरों को भगाने के लिए बंदूक की आवाज या गिलोल बड़े काम की चीज है। चूहों के लिए उनके बिल के मुंह पर विष की गोलियां ही रखना उचित है। गिलहरी इत्यादि टीन की आवाज से भगाई जा सकती है।

---

[1] स्टोव के जैसा एक लैम्प होता है, जिसमें से आग की लौ निकलती रहती हैं। उसीसे अगिया के पौधे जलाये जाते हैं।

(६) **पक्षी**—पक्षियों से बचाव के लिए रखवाले द्वारा गोफन से पत्थर फिकवाना, गजकोटी से बंदूक की-सी आवाज़ करना, टीन की आवाज़ करना इत्यादि युक्तियां काम की हैं। खेतों में मनुष्य के-से आकार लकड़ी व कपड़ों के बनाकर खड़े करवा देने से भी कुछ जंगली पशु और पक्षी डर जाते हैं।

(७) **कीट**—फसलों को कीट से भी बहुत अधिक हानि पहुंचती है। कीट कई प्रकार के होते हैं। कई कृषक टिड्डियों के आक्रमण से भली-भांति परिचित हैं। इस कीट का उड़ता झुंड यदि कहीं उतर जाय तो वहां की वनस्पति का सफाया ही कर देता है। यह तो एक कीट का उदाहरण है। कीट की अनेक जातियां हैं। उनसे पार पाने के लिए उनकी जीवन-प्रणाली जानना आवश्यक है ताकि उनके जीवन में कौन-सी अवस्था ऐसी है जिस समय का आक्रमण उनके मारने के लिए सफल हो जाय। पाठकों की जानकारी के लिए यहांपर कुछ साधारण नियम दिये जाते हैं जिनसे कीट की उत्पत्ति तथा उनका आक्रमण रोका जा सकता है।

१. सफाई—खेतों की मेढ़ों पर कूड़ा-कर्कट नहीं रहने देना चाहिए और फसलों के डंठल इत्यादि चुनवाकर खाद की ढेरी पर डलवाना चाहिए। यदि उनमें कीट के होने की संभावना हो तो उन्हें जलवा देना चाहिए।

२. खेतों की जुताई से भी कीट और उनके अंडे भूमि से बाहर निकल आते हैं जिन्हें पक्षी खा जाते हैं या वे धूप से नष्ट हो जाते हैं, सो जितनी जुताई होगी उतने ही कीट कम होंगे।

३. खेतों में फसलों के साथ पनपनेवाले घासपात को जितना जल्दी निकाला जा सके निकलवाकर खाद की ढेरी पर डलवा देना चाहिए या उन्हें काम्पोस्ट बनाने के काम में लाना चाहिए।

४. बोने के बीज कीट और व्याधिरहित होने चाहिए।

५. **फसलों का हेर-फेर**—लगातार एक ही फसल बोने से उसको हानि पहुंचानेवाले कीट बढ़ते जाते हैं। हेरफेर से जब उन्हें उचित भोजन नहीं मिलता तो वे नष्ट हो जाते हैं।

(६) कुछ ऐसे कीट भी होते हैं जो फसलों को हानि नहीं

पहुंचाते। वे हानि पहुंचानेवाले कीट के लिए घातक होते हैं सो उन्हें बचाना चाहिए।

(७) कीट-भक्षक पक्षियों का रक्षण करना और उन्हें पालना चाहिए।

(८) नर्सरी में पौधों की रक्षा जालीदार कपड़े या तार की जाली से करनी चाहिए।

(९) बहुमूल्य बीज के रोप नर्सरी में तैयार किये जायं तो नर्सरी की भूमि का आंशिक निर्जीवीकरण कर लेना चाहिए। नर्सरी की भूमि पर एक बड़ा बर्तन ढंककर उसके नीचे भाप छोड़नी चाहिए। दो घंटे तक ऐसी क्रिया होनी चाहिए।

(१०) बीज को सुरक्षित रखने के उपाय—

बीज उनकी मात्रानुसार छोटे मोटे टीन, मिट्टी के बर्तन या कोठियां, बोरे, कोठे, बड़े गोदाम, एलेवेटर्स इत्यादि में रखे जाते हैं।

बर्तनों को धूप दिखाकर, कोठे-कोठियों को तथा गोदामों को आग से गरम करके कीटरहित कर सकते हैं। १००० घनफुट जगह के लिए लगभग सात सेर लकड़ी का कोयला जलाना पड़ता है। कोयला सिगड़ी में जलाकर कोठे या गोदाम को बंद कर देना चाहिए।

गेमेक्सीन नाम की औषधि से भी गोदाम कीटरहित कर सकते हैं। आठ-दस हजार घनफुट जगह के लिए आधा सेर औषधि लगेगी। इसकी गैस गोदामों में भर जाती है जिससे कीट मर जाते हैं। इसके उपयोग की रीति औषधि के डिब्बों पर लिखी रहती है। इसके उपयोग में गोदाम को ठीक से बंद करना चाहिए ताकि औषधि बाहर न निकल जाय।

बोरों को धूप में डालकर या औषधियों से कीटरहित कर लेने चाहिए।

एलेवेटर्स—ये ऐसे गोदाम होते हैं जिनमें बहुत से कृषक अपना-अपना माल रख सकते हैं। वेगन या गाड़ियों में से नलों द्वारा अपने-आप माल ऊपर चढ़ जाता है। अनाज एलेवेटर्स में भरते समय गर्म हवा से सुखाया भी जाता है। एलेवेटर्स बैंक जैसा काम करते हैं। एलेवेटर्स वाली कंपनी आपको बैंक की चैक बुक जैसी किताब दे देती है, जिससे आप चाहे जिसको जितना

माल बेचना चाहें बेच सकते हैं। आपका माल वहां कीटरहित सुरक्षित रहता है और उसकी श्रेणी का भी पता रहता है।

कीट की संक्षिप्त जीवन-प्रणाली

(१) कीट सब अंडज वर्ग के हैं अर्थात अंडे से उत्पन्न होते हैं।

(२) कीट के खाने की रीति दो प्रकार की है। कुछ काटकर खाते हैं और कुछ रस चूसते हैं। पहले को चर्वक और दूसरे को चूसक कीट कहते हैं। किसी-किसी में एक ही जाति में बालकीट चर्वक होते है तो तरुण कीट चूसक होते हैं। तितलियों की जाति में ऐसा होता है।

रूपांतर—कुछ कीटों में रूपांतर भी होता है और कुछ में नहीं होता। रूपांतरवाले में बालकीट बहुधा इल्ली-सा होता है। जब यह पूर्ण बाढ़ पा लेता है तो अपना एक कोष बनाकर उसमें कुछ दिन रहता है। उसी में इसका रूप बदल जाता है और तरुण-कीट बिल्कुल भिन्न-सा होता है। तितली की जाति के कीट में रूपांतर होता है। जिनमें रूपांतर नहीं होता उनमें बालकीट का आकार तरुण-कीट-सा ही रहता है। बालकीट धीरे-धीरे बढ़ते हैं और उनके पर आ जाते हैं। किसी-किसीके पर आते ही नहीं, जैसे खटमल। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि रूपांतर के विचार से कीट दो प्रकार के होते हैं एक रूपांतरकर्ता और दूसरे जिनमें रूपांतर नहीं होता।

वैसे तो कीट की अनेक जातियां हो सकतीं हैं परंतु हानिकारक कीट को हम निम्नलिखित सात भागों में बांट सकते हैं—

रूपांतरकर्ता	जिनमें रूपांतर नहीं होता
(१) तितली-वर्ग	(४) टिड्डी-वर्ग
(२) भ्रमर-वर्ग	(५) दीमक-वर्ग
(३) मक्खी-वर्ग	(६) खटमल-वर्ग
	(७) लाही या मोला-वर्ग

रूपांतरकर्त्ता कीट

(१) **तितली-वर्ग**—पाठकों ने तितलियों को फूलों पर उड़ते हुए बहुत देखा होगा। ये उड़ता हुई तितलियां फूलों पर बैठकर उनका रस चूसती हैं। इनसे अपरोक्ष रूप से फसलों को हानि नहीं पहुंचती परंतु इनके बाल-कीट बहुत हानि करते हैं। तितली जैसे पतंग भी होते हैं जो रात्रि को उड़ते हैं। बहुधा दीपक पर आ जाते हैं। तितलियां रंग-बिरंगी होती हैं, पतंग अधिकांश भूरे होते हैं। ये तितली-जैसे रंग-बिरंगे नहीं होते।

इस वर्ग की मादा पौधों के अंगों पर अंडे देती है जिनसे बाल-कीट निकलकर पौधों के अंगों को काटकर खाते हैं। ये इल्लियां होती हैं। जब बाल-कीट की पूरी बाढ़ हो जाती है तो ये कोष बनाते हैं। ऐसे कोष में बिना खाये-पीये ये अपना रूपांतर करते हैं और कुछ दिनों में उन कोषों से तितलियां या पतंग निकल आते हैं। तितली या पतंग की आयु बहुत कम होती है। इस कीट का नाश करना हो तो बाल-कीट का ही नाश करना चाहिए, क्योंकि वे ही हानिकर्ता है। तरुण-कीट इसलिए मारे जाते हैं कि वे वंश-वृद्धि न कर सकें। बाल-कीट पौधों के अंगों पर से चुनवाकर मारे जा सकते हैं अथवा आंतरिक बिष के छिड़काव से इन्हें मार सकते हैं। तितलियों को जाली में पकड़कर और पतंग को रोशनी पर आकर्षित करके मार सकते हैं। खेतों की मेड़ों पर रात्रि को ताप किया जाय तो उसमें बहुत-से कीट आकर मर जाते हैं।

(२) **भ्रमर-वर्ग**—इस वर्ग के कीट को 'कवच पंखी' कीट भी कहते हैं, क्योंकि इनके ऊपर के पंख कठोर होते हैं। इन्हें गोबरीले भी कहते हैं क्योंकि इस वर्ग के अधिकांश बाल-कीट गोबर और कूड़ा-कर्कट में ही रहते हैं। इस वर्ग के कीट पौधों के अंगों में छेद करके उनमें अंडे देते हैं जिनसे बाल-कीट निकलकर पौधों के अंगों को खाते हैं। जब ये टहनी या पौधे के तनों में घुसकर उन्हें खाते हैं तो टहनियां या पौधे मर जाते हैं। मरे हुए पौधों को यदि चीरकर देखें तो उनमें इन्हीं-जैसा बालकीट सफेद या भूरे रंग का दिखाई देता है। पूर्ण बाढ़ पाने पर पौधों के अंदर या बाहर निकलकर ये

रूपांतर करते हैं और इल्ली से कवच पंखी कीट बन जाते हैं। फसल में यदि मरे हुए पौधे दिखें तो उन्हें जला देना चाहिए। कपास में मरे हुए पौधों को उखाड़ें तो जिनमें कीट होगा वह टूट जायगा और जो पौधा फफूंदवाली व्याधि से मरेगा उसकी जड़ पूरी निकल आयेगी।

(३) **मक्खी-वर्ग**—इस वर्ग में घरेलू मक्खी जैसी मक्खियां होती हैं जो फलों में छेद करके अंडे देती हैं। फलों के गूदे में इनके बाल-कीट बढ़कर अपना पोषण करते हैं। बहुधा फूट-जैसे फल में सैकड़ों सफेद कीड़े रेंगते हुए नज़र आते हैं। ये फलों की मक्खी के बाल-कीट होते हैं। पूर्ण बाढ़ पाने पर ये फलों से बाहर निकलकर रूपांतर करते हैं। जहां सड़े हुए फल मिलें उन्हें जला देना चाहिए। इनकी मादा विशेषतः पके फलों में ही अंडे देती हैं।

वे कीट जिनमें रूपांतर नहीं होता

(४) **टिड्डा-वर्ग**—पाठकों ने टिड्डियों के झुंड को देखा होगा। यह कभी-कभी मीलों लंबा-चौड़ा होता है और जहां बैठ जाता है वहां की फसलें ही नहीं पेड़ों के पत्ते तक नष्ट हो जाते हैं। ये टिड्डियां इसी वर्ग की हैं। इसमें टिड्डी के सिवाय दूसरे कीट भी होते हैं, जिन्हें झिंगुर कहते हैं। इस वर्ग की मादाएं बहुधा भूमि में अण्डे देती हैं जिनसे बाल-कीट निकलकर पौधे खाते हैं। चूंकि इनमें रूपांतर नहीं होता, बाल्यावस्था से तरुणावस्था तक ये पौधों के अंगों को खाकर हानि करते हैं। बाल्यावस्था में ये कीट फुदकते रहते हैं; क्योंकि उस समय इनके पर नहीं होते। इन्हें जाली में पकड़कर मारा जा सकता है। टिड्डी के बाल-कीट, जो बहुत संख्या में होते हैं, उन्हें खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर खाइयां खोदकर उनकी ओर हकालने से ये उनमें गिर जाते हैं और मारे जा सकते हैं। खाइयां इतनी गहरी होनी चाहिए कि वे फुदककर बाहर न निकल पायें। तरुण-कीट को विष से भी मार सकते हैं और फ्लेम थ्रोअर से जला भी सकते हैं।

(५) **दीमक-वर्ग**—इस जाति के कीट में दीमक ही विशेष हानिकारक हैं। इनका जीवन बड़ा रहस्यमय है। इनमें अंडे देनेवाली जो मादा होती है उसे कीट-विज्ञानी रानी कहते हैं। यह एक ही स्थान में पड़ी रहती है और

इसके राज्य में कुछ नर (कीट) रहते हैं उनसे मेल होने पर अण्डे दिया करती है। ये नर सिवाय रानी से मिलने के कोई काम नहीं करते। रानी के राज्य में कुछ श्रमिक होते हैं। वही दीमक का घर (टीला) बनाते हैं जो कई जगह जमीन से बहुत ऊंचा उठा हुआ नजर आता है। इसे तोड़ने से हजारों श्रमिक दीमक नजर आते हैं। श्रमिकों के साथ-साथ कुछ रक्षक भी रहते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं से लड़ते हैं। श्रमिक-दीमक घर बनाते हैं, रानी तथा अकर्मण्य नरों के लिए भोजन लाते हैं, रानी के अंडों को नगर के किसी भाग में अर्थात् रानी के चेम्बर (कमरे) से बाहर ले जाकर नगर के दूसरे भागों में उनका सेवन करते हैं।

दीमक सूखी लकड़ी या डंठलों में विशेष लगती है सो खेतों में सूखे डंठल या लकड़ी नहीं रहने देनी चाहिए। गोबर का ताजा खाद भी खेतों में नहीं डालना चाहिए। गेहूं के खेतों में इनके आक्रमण से बहुत-से पौधे मर जाते हैं। दीमक अन्य फसल व पेड़ों को भी काफी हानि पहुंचाती है। इनके टीले में यदि 'कैलशियम सायनामाईड" का चूर्ण पम्प द्वारा फूंका जाय तो उससे ये मर जाती हैं। इनके टीले को खोदकर रानी को जरूर निकाल देना चाहिए। खेतों में पानी देते रहने से भी दीमक से बचाव हो जाता है। नीम की खली के खाद से भी दीमक के आक्रमण नहीं होते।

(६) **खटमल-वर्ग**—इस जाति के कीट पौधों का रस चूसते हैं। इन्हें चुनवाकर नष्ट कर सकते हैं या स्पर्शक विष से इनका नाश हो सकता है।

(७) **मोला, लाही**—इसके कीट हरे रंग के इतने छोटे होते हैं कि बहुत ध्यान से देखने से ही दिखाई देते हैं। ये पौधों का रस चूसकर अपना पोषण करते हैं। ये चंबली और सरसों पर बहुतायत से पाये जाते हैं। इनसे फलियां ऐसी ढंक जाती हैं कि वे काली-काली नजर आती हैं। धनियां पर भी यह बुरी तरह से लगती हैं। जिस फसल पर यह लग जाय उसपर सूखी राख या मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख छिड़कते रहने से ये कीट मर जाते हैं। तंबाकू के काड़े के छिड़काव से भी ये मर जाते हैं। प्रकृति ने दो-एक इनके शत्रु कीट ऐसे बनाये हैं वे इन्हें खा जाते हैं। जहां ये कीट होते हैं वहां वे पहुंच

जाते हैं। इनमें का एक कीट सोनपांखरा नाम का होता है। यह कवचपंखी की जात का होता है। इसके परों पर काले धब्बे होते हैं। ऐसा कीट नज़र आवे तो उसे मारना नहीं चाहिए। इसके बाल-कीट लाही को खाते हैं। 'लेस विंग फ्लार्र' और 'सरफिस फ्लार्र' नाम के बाल-कीट भी लाही का नाश करते हैं। पहले का बाल-कीट लाही का रस चूसकर उनके खोखलों को अपनी पीठ पर लादे फिरता है। सम्भवतः अपने साथियों को अपनी बहादुरी दिखाता हो। दूसरे का बाल-कीट दृष्टिहीन होता है जो टटोल-टटोल कर लाही को खाता है।

उपर्युक्त सात वर्ग के कीट फसलों को हानि पहुंचाते हैं, इनसे कौन-सी औषधि से या किस रीति से छुटकारा हो सकता है यह आगे दिया गया है। प्रत्येक फसल के कीट का स्थानाभाव के कारण यहां वर्णन असंभव है। लेखक की अन्य पुस्तकों में, जिनमें फसलों की खेती का वर्णन है, कीट का पूरा-पूरा वर्णन है।

कीटनाशक उपचार और औषधियां

जब खेतों में कीट का आक्रमण हो जाय तो निम्नलिखित उपचार करने चाहिएं। औषधि छिड़कने के यंत्रों और साधारण औषधियों का स्टाक भी पहले से रखना चाहिए ताकि समय पर उपचार हो सके।

कीट पकड़ने के लिए कपड़े की छोटी-बड़ी थैलियां काम आती हैं। चित्र में दोनों थैलियां दिखलाई गई हैं।

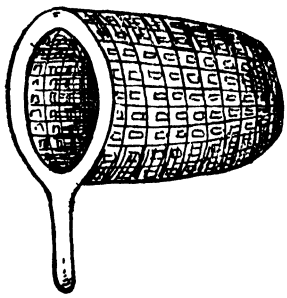

कपड़े की छोटी थैली

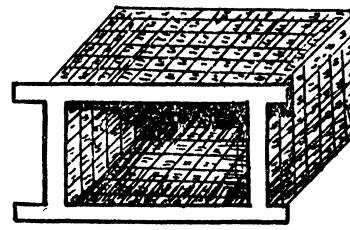

कपड़े की बड़ी थैली

छोटी थैली के कुंडल का व्यास दस-बारह इंच का होना चाहिए और थैली की गहराई एक फुट की काफी होगी। थैली का दस्ता भी एक फुट का ठीक होगा। कीट की तरफ थैली को झटके से चलाया जाय तो वह फूल जाती है और कीट उसमें फंस जाते हैं। थैली में कीट फंसते ही उसे इस तरह से मोढ़ देना चाहिए कि कीट निकलने न पायें।

बड़ी थैली का चौखटा चार फुट लंबा और डेढ़-दो फुट चौड़ा काफी होगा। जाली की गहराई भी डेढ़-दो फुट होनी चाहिए। कभी-कभी खेतों में छोटे-छोटे टिड्डे बहुत हो जाते हैं और पौधों को काट देते हैं। उन्हें पकड़ने के लिए बड़ी थैली बड़े काम की है। ऊपर के दस्ते पकड़कर यदि दो व्यक्ति खेतों पर दौड़ें तो थैली फूल जाती है और फुदकते हुए कीट उसमें फंस जाते हैं जिन्हें बाद में मार सकते हैं।

औषधि छिड़कने के यंत्र—औषधियां सूखी तथा तरल दो प्रकार की होती हैं। सूखी औषधियों का चूर्ण मलमल के कपड़े से भुरभुराया जा सकता है फूंकने के यंत्र से फूंकी भी जा सकती हैं। हवाई जहाज़ द्वारा भी ऐसी औषधियां खेतों पर फूंकी या छिड़की जाती हैं। तरल औषधियों का घोल यंत्रों में भरकर उनमें जैसे स्टोव में हवा भरते हैं ऐसे हवा भरते हैं। फिर नली का मुंह खोलने से महीन फुहार के रूप में औषधि छिड़की जाती है।

ऐसे यंत्रों को काम में लाने के पश्चात खूब साफ करके रखना चाहिए।

मुख्य-मुख्य औषधियां—कुछ औषधियां ऐसी होती हैं जिनकी गंध से कीट दूर रहते हैं, दूसरी वे जिनके उपयोग से कीट मर जाते हैं। जिन औषधियों से कीट मर जायं वे तीन प्रकार की होती हैं। एक तो स्पर्शक अर्थात् वे औषधियां जो यदि कीट पर गिर जायं तो वे मर जायं। दूसरी आंतरिक अर्थात् जिनके खाने से कीट मर जायं और तीसरी गैस के रूप में होती हैं। इनसे भी कीट मर जाते हैं।

जिन औषधियों की गंध से कीट दूर रहें उन्हें अंग्रेजी में 'डीटरेन्ट'

कहते हैं। फीनाईल के घोल की गंध से दीमक दूर भाग जाती है। फीनाईल की गोलियों से कीट दूर भाग जाते हैं। स्पर्शक को 'कान्टेक्ट' विष कहते हैं। तंबाकू के काढ़े के मोले के बदन पर गिरने से वह मर जाता है। ऐसे विष स्पर्शक हुए। संखिया या 'सोडियम फ्लु ओ-सीलीकेट' इत्यादि विष किसी वस्तु के साथ मिलाकर खेतों में रखे जाते हैं, जिन्हें खाकर टिड्डे मर जाते हैं। ऐसे विष आंतरिक विष होंगे। 'कार्बन वाई-सलफाईड' जैसे विष, जिनसे गोदाम कीटरहित किये जाते हैं गैसवाले विष कहलाते हैं। स्पर्शक औषधियां, जो विशेष रूप से काम में लाई जाती हैं निम्नलिखित हैं।

१. तबाकू का काढ़ा—एक सेर तंबाकू को दस सेर पानी में २४ घंटे तक भिगोकर या आधे घंटे तक उबालकर काढ़ा बना लेना चाहिए। इसे कपड़े में छानने के पश्चात् उसमें पावभर साबुन मिलाना चाहिए, क्योंकि साबुन से पौधों पर तथा कीट पर औषधि का फैलाव अच्छा होता है। उपयोग के समय इस औषधि में सात भाग जल और मिलाना चाहिए और छिड़कने के यंत्र द्वारा छिड़कना चाहिए।

२. निकोटीन सलफेट—यह तंबाकू के सत का बना हुआ होता है। हजार भाग जल में एक भाग औषधि मिलाकर इसका उपयोग होना चाहिए। लाही-जैसे कीट के लिए यह विष बड़ा उपयोगी है।

३. तेल-साबुन मिश्रण—आधा सेर साबुन को दस सेर गरम पानी में घोलकर उसमें लगभग दस सेर मिट्टी का तेल मिला लेना चाहिए। उपयोग के समय इसमें बीस भाग पानी और मिलाना चाहिए।

आंतरिक विष—ऐसे विष में 'लेड अर्सिनेट' नाम की औषधि अधिक काम में आती है। इसे चूर्ण तथा घोल दोनों के रूप में काम में लाते हैं। चूर्ण के रूप में काम में लाना हो तो एक भाग औषधि में आठ भाग बुझा हुआ चूना मिलाकर काम में लाना चाहिए। घोल के रूप में काम में लाने के लिए एक भाग औषधि का २५० भाग पानी के साथ घोल बनाना चाहिए।

पाव भर लेड अर्सिनेट को तीन सेर गुड़ को एक मन पानी में घोलकर

फलों के पेड़ों पर या तख्तों पर लगाकर फलों के बगीचों में तख्ते लटका दिये जायं जो फलों की मक्खियां उसपर आकर्षित होकर विष खाकर के मर जाती हैं।

एक भाग सोडियम-फ्लुओ-सीलीकेट, दो भाग चोआ तथा तीस भाग चौकड़ मिलाकर ऐसे मिश्रण की छोटी-छोटी ढेरियां जहां टिड्डियों का आक्रमण हो वहां रखी जायं तो वे खाकर मर जाती हैं।

गैस वाली औषधियां निम्नलिखित है —

कार्बन-बाई-सलफाईड—यह औषधि बड़ी जल्दी आग पकड़ती है सो इसके पास बिजली की रोशनी के सिवाय दूसरी रोशनी या आग नहीं रहनी चाहिए।

एक हजार घनफुट अनाज के लिए ढाई सेर औषधि डालकर बर्तन का मुंह बंद कर देना चाहिए। अड़तालीस घंटे बाद मुंह खोल देना चाहिए ताकि औषधि अपना काम करने के बाद उड़ जाय और फिर कभी आग लगने का भय न रहे।

(२) **क्लोरोसाल**—चालीस मन अनाज के लिए एक भाग औषधि काम में लाई जाती है।

(३) **गेमेक्सीन**—यह औषधि स्पर्शक, आंतरिक तथा गैस तीनों रूप में काम में आती है। इसके छिड़कने से तेज गंध-सी निकलती है जिससे नाक में जलन होती है। जिस गोदाम में छिड़की जाय उसमें एक-दो दिन तक अधिक समय तक नहीं ठहरना चाहिए। आठ-दस हजार घनफुट जगह को कीट रहित करने के लिए आधा सेर औषधि लगती है।

(४) **डी० डी० टी०**—यह औषधि चूर्ण तथा घोल के रूप में मिलती है और उसमें तीन शतांश डी० डी० टी० रहती है। अनाज को ठीक से बचाने के लिए एक हजार मन अनाज में एक भाग चूर्ण मिलाना चाहिए। औषधि मिलाने के पश्चात कम-से-कम छः सप्ताह तक अनाज काम में नहीं लाना चाहिए।

(५) **पारा**—अनाज को घुन से बचाने के लिए पारे का भी उप-

योग किया जाता है। गोबर की टिकिया में थोड़ा पारा रखकर सुखा करके उसे बीज में रख देते हैं। एक मन बीज के लिए लगभग चार तोला पारा लगता है।

(६) **कापर कार्बोनेट**––यह औषधि गैस के रूप में काम में नहीं आती परंतु अनाज को सुरक्षित रखने के लिए काम की है। सौ मन अनाज में आधा मन औषधि का चूर्ण मिलाना चाहिए। अनाज में मिलाने के लिए बीज और औषधि ढोल में डालकर मिला सकते हैं। नाक में चूर्ण जाय तो जलन होती है, इसलिए मिलाते समय नाक पर कपड़ा बांध लेना चाहिए।

तांबा, पारा इत्यादि धातुओं को खाने के अनाज में सुरक्षित रखने के लिए काम में नहीं लाना चाहिए। बीज के अनाज के लिए अच्छा होता है।

बीज अच्छे सूखे हुए हों तो नीम की पत्ती और राख के साथ भी रख सकते हैं। बहुत-से कृषक ऐसा करते ही हैं। दलहन के बीज पर बहुधा कीट के अंडे चिपके रहते हैं। उनपर मिट्टी का तेल लगाने से अंडे जीवरहित हो जाते हैं। बाद में राख में मिलाकर रख सकते हैं।

नेपथलीन की गोलियां भी काम में लाई जा सकती हैं। एक मन बीज में लगभग तीन छटांक गोलियां डालनी होंगी। जिन बर्तनों में बीज रखे जायं उनके मुंह मोम या चिकनी मिट्टी से ऐसे बंद कर देने चाहिए कि उनमें बरसाती नमीवाली हवा न पहुंच सके।

व्याधियां

व्याधियां चार प्रकार की होती हैं।

(१) भूमि में मेजर या माइनर[1] तत्वों की कमी से—

---

१. मेजर तत्व उन तत्वों को कहते हैं जो पौधों द्वारा अधिक मात्रा में काम में लाये जाते हैं। माइनर तत्व वे हैं जो बहुत ही कम मात्रा में काम में आते हैं। आगे खाद के वर्णन में गेहूं के विश्लेषण के अङ्क दिये हैं जिनसे ज्ञात होगा कि कौन-कौन से मेजर और कौन-कौन से माइनर तत्व हैं।

(२) वायरस

(३) फफूंद द्वारा होनेवाली

(४) सूक्ष्म जंतुओं द्वारा होनेवाली

(१) पौधों की बाढ़ में तथा पत्तों के रूप-रंग में कुछ परिवर्तन हो जाता है जिससे यह जाना जा सकता है कि कौन-से तत्व की कमी है। आगे खाद के वर्णन में विशेष वर्णन मिलेगा।

(२) वायरस नाम की वह व्याधि हैं जिसमें पौधे पीले पड़ जाते हैं और अच्छे फलते नहीं। व्याधि के अधिक होने से मर भी जाते हैं। पाठकों को इसका अच्छा उदाहरण भिण्डी में मिलेगा। यह व्याधि एक पौधे से दूसरे पौधे तक चूसनेवाले कीट द्वारा फैलाई जाती है। इस व्याधि की अभी तक कोई औषिध नहीं निकली है। खेतों की सफाई, स्वस्थ बीज, अच्छा खाद, आवश्यकतानुसार सिंचाई तथा कीट से बचाव रखना अच्छा है।

(३) **फफूंद की व्याधियां**—इस वर्ग की व्याधियां कई प्रकार की होती हैं। कोई पौधों की जड़ों में, कोई तने में, कोई पत्तों पर तथा कोई फल-फूल पर होती है। जब ये लग जाती हैं तो पौधों में होनेवाली रासायनिक तथा रस-संचालन की क्रियाएं ठीक से नहीं हो पातीं। इसमें पौधों में रस संचालन के मार्ग बंद हो जाते हैं, जिससे पौधे निर्बल होकर मर जाते हैं। जब पौधे अस्वस्थ दिखें तो कृषि-विभागवालों की राय लेनी चाहिए और उनके आदेशानुसार उपचार करना चाहिए। आगे दी हुई औषधियां और छिड़कने के यंत्र कृषकों को अपने ग्राम में रखने चाहिए ताकि उपचार में विलंब न हो।

इस वर्ग की व्याधियों में कुछ ऐसी हैं जिन्हें कृषक जान सकते हैं। उनका वर्णन भी नीचे दिया जाता है।

(क) बंट—यह व्याधि गेहूं में होती है। इसमें गेहूं के दाने आधे काले हो जाते हैं और उनमें से बू आती है। रोटी अच्छी नहीं होती। बोते समय गेहूं को पानी में डालकर बोना चाहिए। जो गेहूं डूब जायं उन्हें बोना चाहिए।

(ख) कायमा (स्मट)—इसमें फल या बीज की जगह काला बुरादा हो जाता है। ज्वार और गेहूं में यह व्याधि पाई जाती हैं। ऊख में भी यह होती है। ऊख में ऊपर का पत्ता खुलता नहीं। उसमें काला चूर्ण भरा रहता है। ज्वार या गेहूं के बीज में 'कॉपर कार्बोनेट' चूर्ण मिलाकर बोना चाहिए। सवा मन बीज में दो छटांक औषधि काफी होगी।

(ग) हरदा, गेरु या कंगी (रस्ट)—यह व्याधि विशेषतः गेहूं में बहुत पाई जाती है। पत्ते व पौधों पर काले-पीले या नारंगी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं, जिससे बीज पुष्ट नहीं हो पाते। सिकुड़े हुए होते हैं। गंधक का चूर्ण फसल पर छींटने से बचाव होता है, परंतु खर्च अधिक आने से खेत-के-खेत कृषक नहीं छींट सकते। सरकार ही यह कर सकती है।

(घ) मुर्झान (विल्ट)—इस व्याधि में रस-संचालन के मार्ग बंद हो जाने से पौधे मुरझा जाते हैं। कपास, चना तथा तूवर में ऐसी व्याधि अधिकतर पाई जाती है। इससे बचने के लिए व्याधिरहित बीज व व्याधि रोधक जातियां ही बोना चाहिए।

(ङ) पौध मरना ('डेम्पिंगऑफ')—नर्सरी (पनीरी) में पौधे कभी-कभी यकायक मरने लगते हैं। पानी अधिक देने से व सील ज्यादा रहने से यह व्याधि हो जाती है। पौधे बीच में से झुककर मर जाते हैं। उपचार इसका यह है कि पानी कम देना चाहिए।

(च) मिलड्यू—इसमें पत्ते भूरे होकर मुरझा करके गिर जाते हैं।

(छ) भूर चढ़ना (क्लाईट)—इसमें पत्तों पर राख के रंग जैसे धब्बे हो जाते हैं। मटर के पत्तों पर बहुत पाई जाती है। 'बोर्डो मिक्सचर' के छिड़काव से ऐसी व्याधियों से बचाव हो जाता है।

(ज) लाली—ऊख में जो लाली लग जाती है उससे बचाने के लिए व्याधिरहित टुकड़े लगाना चाहिए।

(४) सूक्ष्म जंतुओं द्वारा होनेवाली व्याधियां—

अपेक्षाकृत सूक्ष्म जंतुओं द्वारा होने वाली व्याधियां फफूंदवाली व्याधियों से बहुत कम हैं। इनसे बचाने के उपचार के लिए कृषि-विभागवालों से राय

लेनी चाहिए। इनसे होनेवाली व्याधियों को जल्दी से पहचाना नहीं जा सकता। आलू में एक व्याधि ऐसी होती है जिसे पहचान सकते हैं। जब आलू काटा जाय तो किसी-किसी में लाल रंग का चक्कर निकलता है। यह व्याधि सूक्ष्म जंतु द्वारा होती हैं। ऐसे आलू नहीं बोना चाहिए।

साधारण औषधियां—(१) **बोर्डो मिक्सचर**—यह औषधि तूतिया और चूने के मेल से बनती और 'मिलड्यू', 'ब्लाईट' इत्यादि व्याधियों पर छिड़कने के काम आती है। इसके लिए तूतिया और चूने के घोल अलग-अलग बनाये जाते हैं। चूना इतना डालना होता है कि यदि उस मिश्रण में चाकू डाला जाय तो उसपर तांबा न जमने पाये। ये घोल मिट्टी या लकड़ी के बर्तन में बनाने होते हैं। एक बर्तन में २० सेर पानी भरकर उसमें आधा सेर तूतिया घोलकर उसे छान लेना चाहिए। दूसरे बर्तन में २० सेर पानी में ५ छटांक चूना घोलना चाहिए। फिर तूतिये के पानी में चूने का पानी हिलाते जाकर मिलाना चाहिए। चाकू से देखने पर तांबा जम जाय तो और चूना मिलाना चाहिए। फिर इस औषधि को पिचकारी या छिड़कने के यंत्र से छिड़क दो।

(२) **गंधक-चूना-घोल**—एक छटांक चूने का और एक छटांक गंधक का गाढ़ा घोल बनाकर ढाई सेर पानी में डालकर मिलाओ। पत्तों पर होनेवाली व्याधि के लिए यह भी अच्छी औषधि है।

(३) **पारे का नमक**—'मरक्युरिक क्लोराईड' एक मन पानी में आंधी छटांक औषधि डालकर घोल बना लेना चाहिए। बोते समय यदि कटे हुए आलू के टुकड़े इसमें डुबोकर बोये जायं तो वे सड़ने नहीं पाते। यह औषधि बड़ी ज़हरीली होती है सो हाथ से नहीं छूना चाहिए। इसे धातु के बर्तन में नहीं बनाना चाहिए। इस औषधि से बीज कीट और व्याधि रहित किये जा सकते हैं। चार-पांच मिनिट से अधिक देर तक बीज को औषधि में नहीं रखना चाहिए। अधिक रखने से उनकी अंकुर फैंकने की शक्ति मर जाती है।

२. मनुष्यकृत साधन

१. शिक्षण
२. खेती की विभिन्न प्रणालियां—
   (क) व्यक्तिगत
   (ख) सहकारी
   (ग) सामूहिक
   (घ) भू-प्रधान
   (ङ) श्रम-प्रधान
   (च) मुख्य फसली
   (छ) सागभाजी की खेती
   (ज) फलों की खेती
   (झ) मिश्रित खेती
३. जुताई
४. खाद
५. फसलों का हेर-फेर और मिश्रण
६. बीज और बोआई
७. निंदाई व निराई
८. सिंचाई
९. फसल की तैयारी
१०. वितरण और व्यवसाय

: २ :

मनुष्यकृत साधन

१—शिक्षण

शिक्षा से हमारा अभिप्राय यहांपर सिर्फ थोड़ा-सा लिखना-पढ़ना जानने से नहीं बल्कि प्रत्येक कार्य को ध्यानपूर्वक देखकर उससे लाभ उठाने से है। जहां-कहीं बाहर जाने का काम पड़े, वहां किस प्रकार की खेती किस रीति से की जाती है, उसकी तुलना अपने वहां की रीति से करके वहां के कृषकों से विचार-विनिमय करना चाहिए तथा वहां की लाभप्रद रीतियों को अपने यहां काम में लाना चाहिए। भारतवर्ष में चारों धाम की यात्रा को बहुत महत्व दे रखा है और है भी चारों धाम चारों कोनों पर। ऐसी यात्रा का कृषकों के लिए सिर्फ यह उद्देश्य नहीं है कि भगवान् के दर्शन कर पण्डों से आशीर्वाद ले लौट आवें। तीर्थयात्रा में कृषि-संबंधी अनेक वस्तुएं तथा कार्य देखने को मिलते हैं सो जो अपने यहां से भिन्न तथा उपयोगी हों उन्हें अपनाना चाहिए। यदि आवश्यकता जंचे तो सीखते जाना चाहिए। सरकार की ओर से कृषि-मेले व प्रतियोगिता जहां हों वहां जाना चाहिए और ध्यानपूर्वक वहां का कार्य-क्रम और वस्तुएं देखनी चाहिए। प्रारंभ में ऐसी बात खर्चीली अवश्य जंचती है; परंतु अंत में लाभप्रद ही होती है।

पढ़ना-लिखना भी इतना अवश्य जानना चाहिए कि पत्रों में जो मौसम की रिपोर्ट प्रकाशित होती है अथवा जो सरकारी विज्ञप्तियां कृषि-संबंधी निकलती हैं उन्हें तथा पत्रों में प्रकाशित अनाज तथा अन्य वस्तुओं के भाव-राव को अच्छी तरह से समझ सकें।

मौसमी रिपोर्ट से हमें यह ज्ञात हो जाता है कि अगले अड़तालीस घंटों में मौसम कैसा रहेगा। यदि मालूम हो जाय कि वर्षा होनेवाली है तो हम

सिंचाई का काम बंद कर सकते हैं। यदि कोई फसल ऐसी हो जो उठाई जा सके या खलिहान में तैयार माल हो और वर्षा से हानि होती दीखे तो उसे सम्हाल सकते हैं। ऐसी रिपोर्ट से आंधी, तूफान इत्यादि की सूचना भी मिलती रहती है।

२—खेती की विभिन्न प्रणालियां

खेती निम्न प्रकार की होती हैं। इनमें से कृषक अपनी योग्यता तथा स्थानीय अनुकूलताओं के अनुसार अपना सकते हैं।

(क) व्यक्तिगत—इसमें प्रत्येक कृषक अपनी इच्छानुसार खेती करता है।

(ख) सहकारी—इसमें बहुत-से कृषक अपनी-अपनी पूंजी लगाते हैं। खेती चाहे स्वयं करें अथवा श्रमिकों से करावें। वर्ष के अंत में खर्चा काटकर नफे का वितरण कर लेते हैं।

(ग) सामूहिक खेती—इसमें बहुत-से कृषक मिलकर एक साथ खेती करते हैं। सभी की जमीन अपनी-अपनी रहती है। निज की तथा अपने-अपने कुटुंब की मजदूरी का हिसाब रखते हैं। काम का हिसाब बहुधा घंटों में रख लेते हैं कि अमुक व्यक्ति ने अमुक काम इतने घंटे तक किया। वर्ष के अंत में हिसाब कर अपनी जमीन के अनुसार नफा बांट लेते हैं।

पहले प्रकार की खेती में विशेष सुधार की जगह नहीं रहती, क्योंकि व्यक्तिगत खेती में कीमती यंत्र नहीं खरीदे जा सकते। फसलों की देख-भाल में खर्चा अधिक होता है। कीट और व्याधियों का आक्रमण हो जाय तो उनसे रक्षा करना कठिन हो जाता है। औषधियों और यंत्रों का खर्च बहुत बढ़ जाता है। माल कम होने से बेचने में भी खर्चा अधिक होता है, जिससे लाभ कम होता है।

दूसरे प्रकार की खेती में पूंजी काफी होती है। इससे सब प्रकार की सुविधाएं हो जाती हैं। जो बाधाएं पहले प्रकार की खेती में दिखलाई देती हैं वे नहीं आतीं।

तीसरे प्रकार की सामूहिक खेती में यह लाभ है कि कृषक और उनके कुटुंब के लोग स्वयं काम करते हैं; सो काम अच्छा होता है और पहले प्रकार की खेती में दिखलाई गई बाधाएं इसमें भी नहीं आतीं।

(घ) **भू-प्रधान खेती**—भू-प्रधान खेती उसे कहते है, जिसमें जमीन बहुत होती है। प्रति एकड़ कम खर्च से ही फसलें उपजाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिए बरानी खेतों में अनाजों की अथवा दूसरी फसलों की खेती।

(ङ) **श्रम-प्रधान**—इसमें ज़मीन कम होती है। श्रम तथा खर्च प्रति एकड़ अधिक लगाकर अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसमें खाद, सिंचाई तथा कृषि के अन्य कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। एक खेत से प्रति वर्ष एक ही फसल नहीं ली जाती, बल्कि दो-तीन तक ली जा सकती हैं। साग-भाजी की खेती की गणना इसमें हो सकती है। अन्न तथा दूसरी फसलों की खेती, जिसमें बहुत खाद दी जाय व सिंचाई की जाय तो उसकी गणना भी श्रम-प्रधान खेती में होगी।

(च) **मुख्य फसली खेती**—यह उस प्रकार की खेती है, जिसमें कृषक की एक फसल प्रधान रहती है और उसीकी खेती की ओर विशेष ध्यान रहता है, जैसे गेहूं-खंड में गेहूं की, कपास-खंड में कपास की।

ऐसी खेती में कृषक को एक ही प्रकार का ज्ञान विशेष प्राप्त करना पड़ता है। आय के लिए फसल की तैयारी तक ठहरना पड़ता है और खर्च पहले करना पड़ता है। इसमें एक डर यह है कि यदि मुख्य फसल को ईति-भीति मार जाय तो हानि बहुत हो जाती है।

(छ) **साग-भाजी की खेती**—शहरों के निकट साग-भाजी की खेती विशेष लाभप्रद होती है; क्योंकि अब भी अच्छी साग-भाजी की खपत शहरों में ही अधिक होती है। गांवों में भी इनके उपयोग का प्रचार बढ़ रहा है परंतु साधारण व निम्न श्रेणी की सब्जी से लोग काम चलाते हैं। अच्छी शहरों में भेज देते हैं।

(ज) **फलों की खेती**—शहरों के निकट अथवा यातायात का सुभीता होने से शहरों से कुछ दूर पर भी फलों की खेती का प्रचार अच्छा बढ़ रहा

है। इस प्रकार की खेती में पहले कुछ साल विशेष परिश्रम करना पड़ता है। बाद में फल आने लगें तब थोड़े परिश्रम से अच्छी आय हो जाती है।

(झ) **मिश्रित खेती**—इसमें अनाज तथा अन्य फसलों की खेती के साथ-साथ साग-भाजी उपजाना, फलों के वृक्ष लगा देना, मधुमक्खी, रेशम-कीट कुकुट-पालन, पशु-पालन तथा दूध-घी इत्यादि का कार्य भी साथ-साथ रहता है। ऐसी खेती को सुचारु रूप से चलाने के लिए बहुत योग्य कृषक होने चाहिए, क्योंकि इसमें ध्यान बहुत बंटा रहता है। ऐसी खेती में आय अधिक होती है और सालभर आती रहती है।

उपर्युक्त खेतियों में से सहकारी या सामूहिक श्रम-प्रधान मिश्रित खेती अच्छी होती है परंतु यदि परिस्थितियां अनुकूल न हों तो उपर्युक्त में से किसी-को अपनाना होगा। जहां कृषकों में पारस्परिक मेल और सद्भावना का अभाव हो वहां या सहकारी सामूहिक खेती हो ही नहीं सकती। वहां तो व्यक्ति-गत ही करनी होगी। जहां सिंचाई का अभाव हो वहां भू-प्रधान खेती को अपनाना होगा।

३—जुताई

जुताई क्यों करनी पड़ती है ?

(१) मिट्टी में पौधे अपनी जड़ें अच्छी तरह से फैलाकर अधिक-से-अधिक खाद्य वस्तुओं का उपयोग कर सकें, इसलिए भूमि को जोत-जुताकर ढीली करना होता है।

(२) जुताई से हम उन घास-पात के पौधों को नष्ट कर देते हैं जो पौधों के भोजन में हिस्सा बंटाते हैं तथा कीट और व्याधियों को शरण देते हैं।

(३) जुती हुई जमीन में बरसाती पानी का संचय अच्छा होता है।

(४) जुताई से जमीन में रहनेवाले हानिकर्ता कीट व उनके अंडे ऊपर आ जाते हैं, जिन्हें पक्षी खा जाते हैं या वे धूप से नष्ट हो जाते हैं।

(५) जुताई से भूमि में हवा का आवागमन अच्छा होता है, जिससे

प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा पौधों का भोजन अच्छा तैयार होता है।

(६) जुताई से जमीन खुल जाती है, जिससे उसके कणों का छेदन अच्छा होता है और खाद्य-तत्व घुलनशील हो जाते हैं।

(७) खाद दी हुई भूमि में खाद का वितरण अच्छा हो जाता है।

(८) हरी खाद गाढ़ने के लिए भी जुताई करनी पड़ती है।

(९) खड़ी फसल की कतारों के बीच की भूमि की जुताई से घास-पात निंदाई की अपेक्षा कम खर्चे से नष्ट किये जा सकते हैं।

(१०) खड़ी फसल की कतारों के बीच की भूमि की जुताई से जमीन की पपड़ी टूट जाती है, जिससे बहुत अंश तक पानी का वाष्पन कम हो जाता है।

(११) कंदवाली फसलों को जमीन में से निकालने के लिए भी जुताई करनी पड़ती है।

खेती के यंत्रों का चुनाव

खेती के यंत्रों का चुनाव खेती के प्रकार के चुनाव पर निर्भर है।

(१) छोटी क्यारियों की जुताई हाथ के यंत्र गैंती, कोदाल (फावड़ा) इत्यादि से की जाती है। बड़े खेतों के लिए देशी तथा विदेशी यंत्र काम में लाने पड़ते हैं। यंत्र देशी हो अथवा विदेशी दोनों में जुताई का पहला यंत्र हल है। इसीसे भूमि चीरी-फाड़ी जाती है। इसके बाद क्रमानुसार निम्न-लिखित जुताई के यंत्र काम में आते हैं।

(२) ढेले तोड़ने और मिट्टी को भुरभुरी करने के यंत्र।

(३) निंदाई के यंत्र।

जुताई के यंत्रों के प्रकार तथा उनकी संख्या फार्म[1] के क्षेत्रफल तथा खेती के प्रकार के चुनाव पर निर्भर है। यह स्वभाविक है कि फार्म का क्षेत्रफल जितना अधिक होगा उतने अधिक यंत्र रखने होंगे। बहुत बड़ा

---

[1] एक कृषक या संस्था के पास जो क्षेत्रफल हो उसे फार्म कहेंगे।

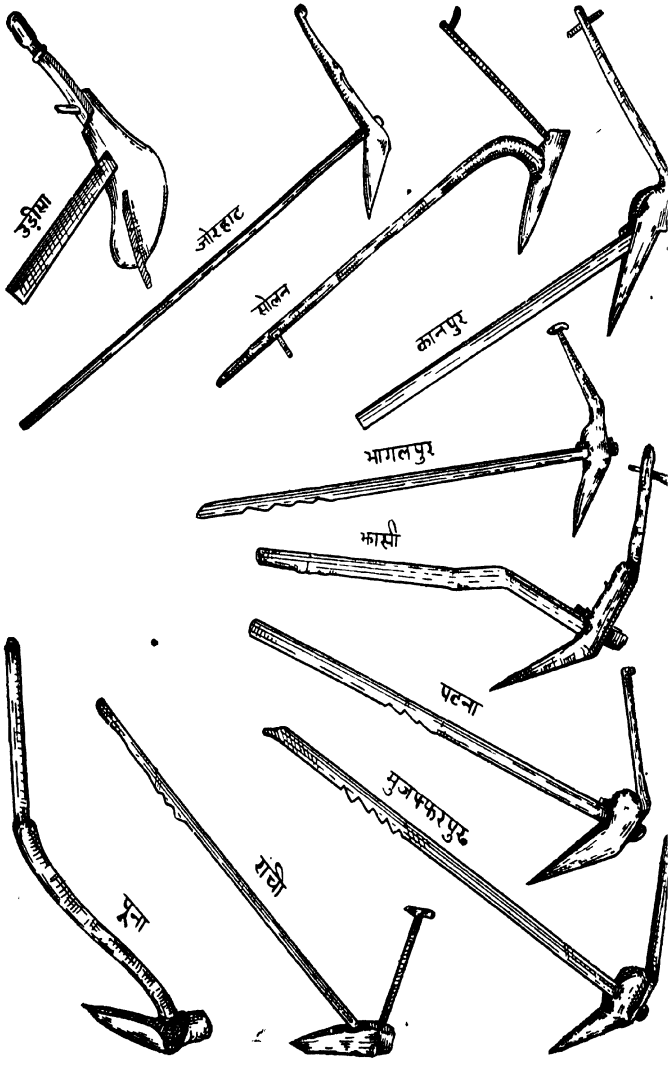

भारत के विभिन्न भागों के हल

फार्म होने से भाप या तेल की शक्ति से चलनेवाले इंजिन तथा उनसे चलनेवाले यंत्र रखने होंगे।

हल—हल कई प्रकार के होते हैं, परंतु उनके कार्य के आधार पर हम उन्हें मुख्यतः दो प्रकार में बांट सकते हैं। एक वे जो ज़मीन को चीरते हैं और दूसरे वे जो उसे काटकर उलटते हैं। जिस भाग से मिट्टी उलटती है उसे 'मोल्ड बोर्ड' कहते हैं। पहले प्रकार के हल भारत के भिन्न-भिन्न भागों

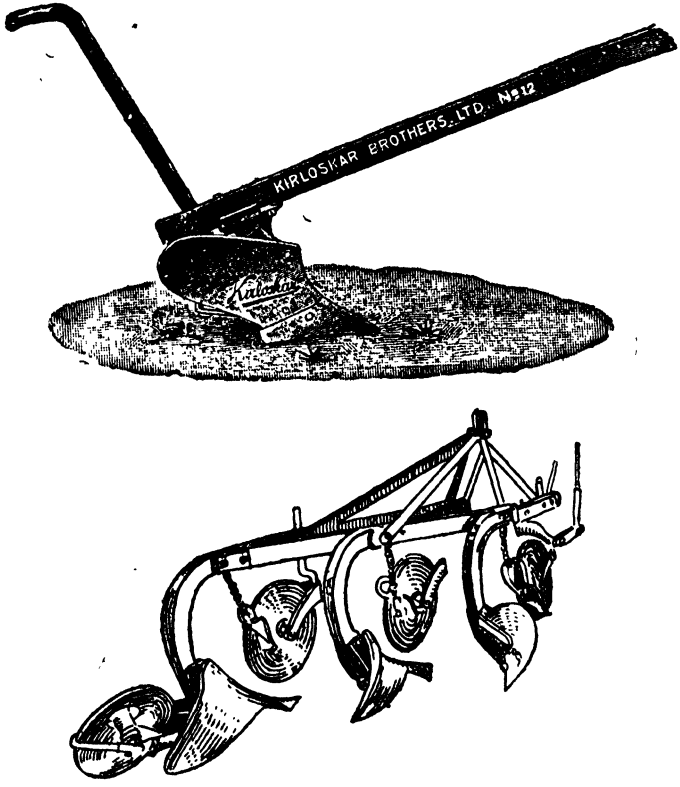

तीन फारवाला हल

में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, जो पशु-शक्ति तथा जमीन की जाति-अनुसार काम में लाये जाते हैं।

जहां बैल बड़े होते हैं वहां तथा जहां की भूमि कठोर और भारी होती है वहां भारी हल काम में लाये जाते हैं।

'मोल्ड बोर्ड' वाले यानी मिट्टी उलटनेवाले हल बैलों से चलनेवाले तथा ट्रेक्टरों से चलनेवाले भी होते हैं।

भूमि को चीरनेवाले की अपेक्षा मिट्टी पलटनेवाले हल अच्छे होते हैं, क्योंकि इनसे घास-पात की जड़ें ऊपर आजाती हैं और वे मर जाते हैं। जहां चीरनेवाला हल दो बार चलाना होगा, वहां मिट्टी-पलट हल एक बार ही में उतना काम कर देगा।

ऊपर कह चुके हैं कि हल हलके और भारी दो प्रकार के होते हैं और पशु-शक्ति-अनुसार चुने जाते हैं। जहां पशु बड़े होते हैं वहां, जहां की मिट्टी भारी हो वहां तथा जहां गहरी जुताई करनी हो वहां भारी हल काम के होंगे। बड़े पशु जहां होते हैं वहां हलाई की संख्या कम करनी होती है, क्योंकि उनसे बड़े हल चलाये जाते हैं, जिनसे एक बार में जैसी जुताई हो जाती है वैसी हलके हलों से करने में हलाई की संख्या अधिक होगी।

मिट्टी-पलट हल में एक लाभ यह भी होता है कि उनसे सिंचाई की नालियां भी बनाई जा सकती हैं। कुछ हल तो ऐसे होते हैं जिनके दोनों तरफ 'मोल्ड बोर्ड' लगे रहते हैं। ऐसे हलों से नालियां और पारियां सरलता से कम खर्चे में बन जाती है। गन्ने तथा साग-भाजी की खेतीवालों के लिए ये हल बड़े काम के हैं।

जहां सिर्फ देशी हल ही होते हैं वहां हमारे कृषक पारियां बनाने के लिए देशी हलों में एक पटिया लगाकर काम कर लेते हैं। ऐसा पटिया हलकी डंडी या हरस और हल-मूल में लगाकर बांध देते हैं। ऐसे पटियों को 'हेर-पाटली' कहते हैं। हेर-पाटली से काम करने में यह ध्यान रखना होता है कि खेत की कौन-सी मेंड की ओर से काम किया जाय। कृषक हल को बांये हाथ से पकड़ते हैं, सो प्रारंभ में हरवाह को खेत

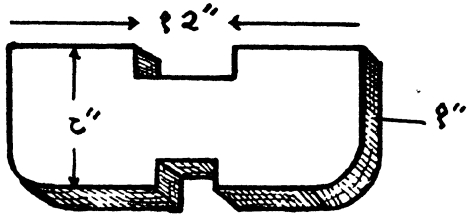

पाटिया (हर-पाटली)

के सेड़े (मेंड) की तरफ खड़े होकर काम शुरू करना चाहिए। ऐसा करने से जब वह एक ओर से दूसरी ओर जाकर लौटता है तो जो पारी बनती है वह उसके पैरों से टूटती नहीं। इसके विपरीत यदि वह खेत की तरफ रहकर काम शुरू करेगा तो लौटते समय पारी टूटेगी। चीर-फाड़ करनेवाले हल ग्रामीण कारीगरों से अपने पशुओं के आकार तथा उनकी शक्ति अनुसार बनवा सकते हैं।

साधारणतः लगभग बारह मन वजनवाले बैलों के लिए निम्नलिखित आकार के हल बनवाना अच्छा होगा।

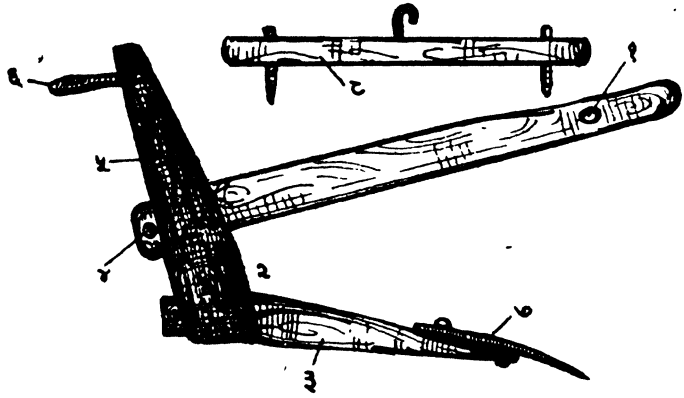

१—लकड़ी की कील, जिसमें जूए की रस्सी फंसी रहती है। २—हरस या हलकी डंडी ११′ × ६″ × १½″, ११०°। ३—हल-मूल १⅞′। ४—लकड़ी की कील। ५—धड़ ३⅞′ × ५½″ × ५″। ६—हत्था १०″। ७—लोहे का फार १२″। ८—जूआ ५½′ × ४″ × २½″।

मिट्टी-पलट हल तो बने-बनाये आते हैं और 'मोल्ड बोर्ड' वगैरह कारखानों में बनते हैं। इनके लकड़ी के भाग भी बने-बनाये आते हैं। इनके बनानेवालों ने इनके कई नाम दे रखे हैं, जैसे पंजाब हल, मेस्टन हल, विक्टरी हल, वाट्सन हल इत्यादि। सिद्धांत इन सबमें मिट्टी पलटने का ही है। बनावट में कुछ हेरफेर होने से कुछ कम-ज़्यादा मिट्टी काटते हैं और उलटते हैं। मिट्टी-पलट हल में ऐसे हल भी होते हैं जिनके 'मोल्ड बोर्ड' दायें-बायें दोनों तरफ घुमाये जा सकते हैं। ऐसे हल पहाड़ी ढालू भूमि में अच्छा काम देते हैं।

बैलों से चलनेवाले हलों से हलाई कितनी बार की जाय यह फसल की जाति, भूमि में उपजनेवाले घास-पात तथा अन्य यंत्रों की उपलब्धता पर निर्भर है। जहां सिर्फ हल ही जुताई का यंत्र होता है वहां हल कई बार चलाना होता है। जहां बखर जैसा यंत्र, जिससे हलकी जुताई का काम हो सकता है, वहां हलाई की संख्या कम करके बाद के काम ऐसे यंत्रों से हो सकेंगे। गेहूं जैसी फसल बहुत महीन मिट्टी में अच्छी होती है सो हलाई अधिक करनी होगी। चने के लिए उतनी नहीं करना पड़ती।

(२) **ढेले तोड़ने और मिट्टी को भुरभुरी करने के यंत्र**—

हल के बाद दूसरा अत्यंत उपयोगी यंत्र 'बखर' है, जिससे हलकी जुताई भी होती है और ढेले भी टूट जाते हैं। इसे भी ग्रामीण-कारीगर द्वारा बनवाया जा सकता है। कई जगह से इस यंत्र के बारे में पूछताछ आने से, इसका भी चित्र व नाप यहां दिया जाता है ताकि कृषक स्थानीय कारीगरों से बनवा सकें।

बरवा का धड़ ढाई फुट से चार फुट लंबा होता है। ढाई फुटवाले का आकार ३०″ × ६″ × ६″ होना चाहिए। चार फुटवाले का व्यास बीच में छः इंच और दोनों छोरों पर लगभग चार इंच का होना चाहिए। इस धड़ में दो डंडियां होती हैं। इनमें से एक बड़ी और एक छोटी। कहीं-कहीं छोटी इतनी छोटी होती है कि वह बड़ी के साथ थोड़ी दूरी पर जोड़ दी जाती है। कहीं-कहीं दोनों अलग-अलग रहती हैं जैसा कि चित्र में दिखाया

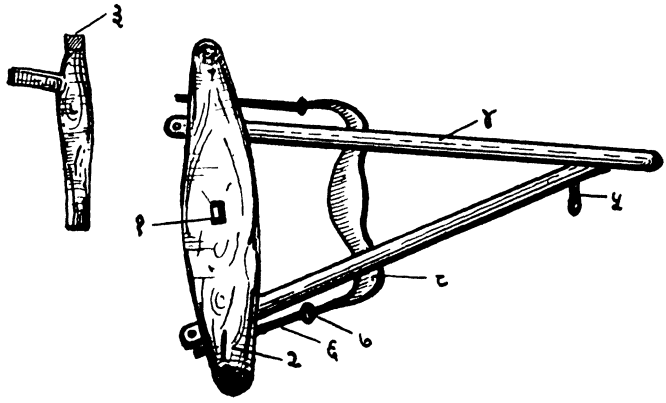

बखर

१—नेजवण लगाने का छेद, २—धड़ ४′, बीच का व्यास ६″, ३—नेजवण, छोर का व्यास ४″, ४—बड़ी डंडी १०′, ५—छोटी डंडी ८′, ६—दांते १८″ (५-६ इंच धड़ में शेष बाहर), ७—कुंडल लोहे के, ८—लोहे की पास

गया है। बखर में दो दांते होते हैं, जिनमें लोहे की पास लगी रहती है। उसीसे जमीन उखड़ती है और बखर के धड़ से ढेले टूटते हैं। हरवाहा

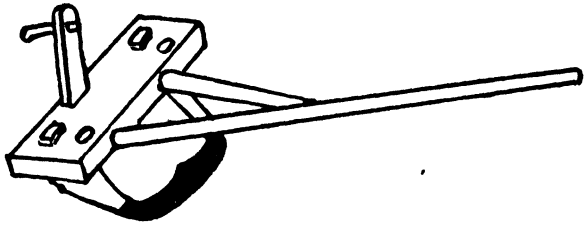

बहुधा बखर के धड़ पर खड़ा होकर ही हकालता है, जिसमें वह गहरा बैठे। बखर के धड़ से बैल जितने आगे रहेंगे उतना अधिक गहरा बैठेगा और नज़दीक रहने से कम बैठता है।

बखर के धड़ में जो दांते बिठाये जाते हैं वे लगभग दस-बारह इंच बाहर और छः इंच धड़ के अंदर रहते हैं। इन्हीं दांतों के छोर पर दो लोहे के कुंडल रहते हैं जिनसे पास पकड़ी जाती है। पास लोहे की लगभग बीस-बाईस इंच लंबी और बीच में लगभग तीस इंच चौड़ी होती है। बखर के दांते धड़ से ४०° के कोण पर रहते हैं। बखर का दस्ता जिसे 'नेजवण' कहते हैं लगभग ढाई फुट का होता है, जिसका निचला भाग बखर के धड़ में लगभग पांच इंच बैठ जाता है। जब बखर खेत में चलता है तो नेजवण पास के दूसरी ओर लगाया जाता है और जब बखर रास्ते पर चलता है तो बखर उलट दिया जाता है और नेजवण पास की तरफ लगा देते हैं। नेजवण का ऊपर का मुंह मुड़ा हुआ होता है, जिसे पकड़कर हरवाहा बखर को टेढ़ा करता है और पास पर जो घास-पात जम जाता है उसे 'पराणं'[१] से साफ करता है। बखर जब सड़क पर ले जाया जाता है तो उसे एक लकड़ी पर डालते हैं। उसे "घीहरी"[२] कहते हैं।

जैसे लकड़ी के हल के समान मिट्टी-पलट हल होते हैं, वैसे ही बखर जैसे काम करनेवाले और यंत्र भी होते हैं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं। ये बैलों से चलाये जाते हैं।

१. "डिस्क या तबेदार होरो", "स्प्रिंग टूथ होरो" कल्टीवेटर

इनसे हल की जुताई के बाद काम लिया जाता है और काम करीब बखर जैसा ही होता है। ये बखर की अपेक्षा अधिक मूल्य के होते हैं।

---

[१] बांस का एक डंडा रहता है, जिसके नीचे की ओर खुर्पी जैसा तेज लोहा लगा रहता है, जिससे पास साफ करता है। यह पराणा बैलों को हकालने के काम भी आता है। इसकी लंबाई छः-सात फुट होती है।

२. अंग्रेजी अक्षर (V) के आकार का लकड़ी का टुकड़ा रहता है, जिसकी दोनों भुजाएं बखर के धड़ के नीचे डाल देते हैं और भुजाओं को मिलानेवाला भाग डंडी पर डाल देते हैं। ऐसा करने से बखर का धड़ जमीन के ऊपर रहता है। लकड़ी के टुकड़े की दोनों भुजाएं जमीन पर घिसटती हैं।

जब जमीन कठोर हो जाती है और बड़े-बड़े ढेले पड़ जाते हैं तो वे बखर या दूसरे यंत्रों से जल्दी-जल्दी नहीं टूटते। उन्हें तोड़ने के लिए लकड़ी का पाट काम में आता है, जिसे 'सोहागा' या 'पढार' भी कहते हैं। यह पांच-छः फुट लंबा, आठ-दस इंच चौड़ा और इतना ही मोटा हो सकता है। इसमें दो कड़े लगे रहते हैं, जिनमें रस्सी बांधकर उसे जूए से बांध देते हैं। इसके ऊपर हरवाहा खड़ा हो जाता है और बैलों को हकालता रहता है। इसकी घसीटन से ढेले टूटते जाते हैं। बहुत-से कृषक खजूर के पेड़ से भी ऐसा कार्य कर लेते हैं। पंद्रह-सोलह फुट लंबी खजूर के दोनों छोर पर एक-एक छेद करके उनमें खूंटे ठोक देते हैं। इन खूंटों से रस्सियां बांधकर उन्हें जूओं से बांध देते हैं। इसमें दो जोड़ी बैल लगते हैं और दो हरवाहे। दोनों खजूर के छोरों पर खड़े होकर अपने-अपने सामने की जोड़ी को हकालते हैं। खजूर से घिसकर ढेले टूट जाते हैं। इसमें कीमत बहुत कम लगती है और काम बहुत जल्दी होता है।

फसल बोने के पहले भी जुताई के लिए उपर्युक्त यंत्र काम में आते हैं। ये बैलों से चलाये जाते हैं, लेकिन जहां ज़मीन अधिक हो और जहां मजदूर मिलने में कठिनाई हो वहां ट्रेक्टरों से भी जुताई की जाती है। ट्रेक्टर उन्हीं कृषकों के लिए लाभदायक होगा जिनकी खेती यदि भू-प्रधान है तो उनके पास लगभग चारसौ एकड़ जमीन हो और यदि श्रम-प्रधान है तो लगभग दो सौ एकड़ हो। जहां ऐसी व्यवस्था न हो वहां सहकारी या सामूहिक खेतीवाले ही ट्रेक्टर काम ला सकते हैं। प्रश्न ट्रेक्टर खरीदने से ही हल नहीं हो सकता उसके साथ और भी कई बातों का विचार करना होता है, जैसे उससे काम में लानेवाले यंत्रों को खरीदने की पूंजी, ट्रेक्टरों के चालकों का मिलना। चालक भी ऐसे होने चाहिए जो छोटी-मोटी टूट-फूट ठीक कर सकें। ट्रेक्टर तथा यंत्रों के अंगों की प्राप्ति के लिए निकट में कोई दूकान या कारखाना भी होना चाहिए। पेट्रोल, तेल, मोविल आयल इत्यादि की प्राप्ति सरलता से होनी चाहिए। जब उपर्युक्त बातों का प्रबंध हो तो ट्रेक्टर खरीदना अच्छा है।

हल्की जमीन में काम करने योग्य ट्रेक्टर और उसके साथ काम में लाने योग्य यंत्रों को खरीदने के लिए कम-से-कम आठ-दस हजार रुपये चाहिए और भारी जमीन में काम पड़े तो लगभग पंद्रह हजार की पूंजी अवश्य चाहिए।

भारत में यदि ऐसी संस्थाएं हो जायं जो ट्रेक्टरों तथा यंत्रों को किराये से दिया करें तो छोटे कृषक भी ट्रेक्टरों से लाभ उठा सकते हैं। सरकार की तरफ से ऐसी योजनाएं कहीं-कहीं काम कर रही है, परंतु भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए ये बहुत कम हैं। नई ज़मीन को जोतने के लिए अथवा कांस जैसे घास-पात के खेतों को सुधारने के लिए ट्रेक्टर द्वारा जुताई बड़े काम की है।

ट्रेक्टर छोटे-बड़े कई प्रकार के होते हैं जिन्हें हम दो भागों में बांट सकते हैं। एक चेन पर चलनेवाले और दूसरे खुले पहियों से चलनेवाले।

चेन पर चलनेवाले की चेन लोहे की होती है। खुले पहिएवाले के पूरे पहिए लोहे के होते हैं अथवा रबर टायर के भी होते हैं। चाल के विचार से चेनवालों से खुले पहिएवालों की अधिक और खुले पहिएवालों में भी रबर टायरवालों की चाल और भी अधिक होती है। ऐसे ट्रेक्टरों के पीछे 'ट्रेलर'[1] लगा देने से माल ढोने का काम भी हो जाता है। इन कारणों से चेन की अपेक्षा खुले पहिएवाले ट्रेक्टर और उनमें भी रबर-टायरवाले खरीदना अच्छा होता है।

ट्रेक्टर 'पेट्रोल', 'डीजल तेल,' 'पावरिन' पर चलनेवाले होते हैं सो जिस प्रकार का पदार्थ प्राप्त हो सके उसीसे काम चलनेवाले ट्रेक्टर खरीदने चाहिए। अधिकांश ट्रेक्टर डीजल तेल पर ही चलते हैं, क्योंकि यह तेल सस्ता पड़ता है। ट्रेक्टर खरीदे जायं तो उनके साथ निम्नलिखित यंत्र भी खरीदने होंगे या खरीदने चाहिए।

---

[1] रबर-टायर की दो या चार पहिएवाली गाड़ी।

(१) तीन फारवाला हल।

(२) 'डिस्क हेरो'। या 'कल्टीवेटर'।

(३) 'सीड ड्रिल'—बोने का यंत्र।

(४) 'मल्टी थ्रेशर'—यानी वह यंत्र जो फसल को काटने, गहने और उड़ावन के तीनों काम एक साथ कर सके। यदि ऐसी न खरीद सकें तो कम-से-कम 'थ्रेशर और विनोअर' गाहने और उड़ावनवाली कल तो अवश्य खरीदें। अवकाश के समय ट्रेक्टर से दूसरा काम लिया जा सके, इसके लिए गन्ना पेरने की चर्खी, तेल की घानी, आटा पीसने की चक्की इत्यादि भी रखना चाहिए ताकि लगी हुई पूंजी का पूरा उपयोग हो सके।

जब ट्रेक्टरों से हलाई का काम हो जाता है तो बाद की जुताई 'कल्टीवेटर' या 'डिस्क हेरो' से होती है। अधिकतर 'डिस्क हेरो' ही काम में आता है। ट्रेक्टरों से जुताई, निंदाई, तथा उनके साथवाले यंत्रों से कटाई, गहाई और उड़ावन का काम भी वहां लेते हैं जहां पशु-शक्ति उपलब्ध नहीं होती। जहां पशु-शक्ति प्राप्य होती है वहां ट्रेक्टर तथा पशु-शक्ति दोनों से काम लिया जाता है। ऐसी स्थिति में पशुओं से खाद भी मिल जाता है।

संपूर्ण यांत्रिक खेती के गुण-दोष

गुण—

(१) जुताई जल्दी होती है।

(२) जुताई आवश्यकतानुसार गहरी या उथली हो सकती है।

(३) बोने के यंत्र से बोने का कार्य जल्दी हो जाता है और बीज बराबर की दूरी पर गिरते हैं।

(४) फसल तैयार होने पर कटाई, गहाई और उड़ावन का कार्य सब एक साथ हो जाता है, विशेषतः गेहूं के लिए ऐसे यंत्र बड़े काम के हैं।

(५) उन्हें रखने की जगह कम लगती है।

(६) चारे-दाने का प्रबंध और पशुशालाओं की नित्य की सफाई का झंझट नहीं रहता।

दोष—

(१) पूंजी बहुत लगती है।

(२) यदि यंत्र बिगड़ जाय तो काम ठप्प हो जाता है, जबतक कि मरम्मत ठीक से नहीं हो जाती।

(३) तेल इत्यादि, जिससे ट्रेक्टर चलते हैं, यदि समय पर न मिले तो भी काम बंद हो जाता है।

(४) अच्छे चालक जल्दी मिलते नहीं।

३. **निंदाई के यंत्र**—जुताई के यंत्रों के चुनाव में तीसरी प्रकार के यंत्रों में निंदाई के यंत्रों की गणना होगी। ऐसे यंत्र खड़ी फसलों के कतारों के बीच की भूमि की जुताई के काम आते हैं और वे छोटे-बड़े कई प्रकार के होते हैं। हाथ से चलाये जानेवाले यंत्रों से लेकर ट्रेक्टरों से चलाये जानेवाले यंत्र भी होते हैं। इनका वर्णन आगे निंदाई (निराई) के अध्याय में दिया गया है।

४—खाद

मनुष्यों को जिस प्रकार भोजन की आवश्यकता होती है उसी भांति पौधों को भी होती है। मनुष्य शाकाहारी था मांसाहारी होते हैं परंतु पौधे लवणाहारी होते है अर्थात् ये जल के घोल में लवणों का उपयोग करते हैं। अपवाद हर जगह पाया जाता है, उसी भांति वनस्पतियों में भी है। अमरलता पेड़ों के रस पर ही रहती है। ऐसे वनस्पति की गणना शाकाहारी में हो सकती है। कुछ पौधे मांसाहारी भी होते है। परंतु प्रारंभिक जीवन तो उनका लवणाहारी ही होता है। मांसाहारी पौधे अपने कुछ अंगों को ऐसे फैलाये रखते हैं कि उनपर यदि कोई कीट आकर बैठ जाय तो उसके बैठते ही अंग बंद हो जाते हैं। वह कीट मर जाता है

और उसके रस का उपयोग पौधे करते हैं। ऐसे अपवादों को छोड़कर सब वनस्पति लवणाहारी होती है। लवणों का घोल भूमि के जल में बनता है। उसे पौधे जड़ों द्वारा लेकर फिर पचाते हैं। जैसे मनुष्यों के शरीर में कई रसायनिक क्रियाओं द्वारा भोजन पचता है, उसी भांति पौधों में भी इन लवणों के घोल तथा वायुमंडल के कार्बन के मेल से पौधे कार्बनिक पदार्थ बनाते है। उन्हीं से पौधों के अंग बनते हैं और उनकी बाढ़ होती है। पौधों में कौन-कौन-से तत्व पाये जाते हैं, यह उनके विश्लेषण से जाना जा सकता है। यहांपर गेहूं के विश्लेषण के अंक दिये जाते है, जिससे पाठक यह जान पायंगे कि कौन-कौन-से तत्व कितनी मात्रा में रहते हैं।

	शतांश		प्रति दस लाख भाग में
जल	१०.००	जस्ता	१००
कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन	लगभग ८६.००	निकेल	३५
		लोहा	३१
		बोरान	१६
		मैंगेनीज़	२४
न.इट्रोजन	१.९३	तांबा	६
फासफोरस	०.८३	एल्युमिनियम	३
पोटेशियम	०.५४	ब्रोमीन	२
कैलशियम	०.०६	आयोडीन	००६
सोडियम	०.०४	संख्या	.१
मेग्नेशियम	०.२१	कोबाल्ट	.०१
गंधक	०.१६	फ्लोरीन	सूक्ष्म
क्लोरीन	०.००६	वेनेडियम	”
सिलिकॉन	०.०४०	सेलेनियम	”

उपर्युक्त सूची में से पहले तीन तत्व वायुमंडल तथा जल द्वारा पौधों को मिल जाते हैं। साधारणतः नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटेशियम की विशेष मांग होती है। इनमें भी भारत की अधिकांश भूमि में पोटेशियम

की आवश्यकता नहीं होती। अम्लदार भूमि में चूने की और ऊसर के लिए केलशियम सलफेट की आवश्यकता होती है। शेष तत्व आवश्यकतानुसार भूमि से मिल जाते हैं; और यदि किसीकी कमी हुई तो उसके पहुंचाने का प्रबंध करना चाहिए। ऐसे तत्वों की कमी पौधों की बाढ़ और उनके रूप-रंग या उनकी व्याधियों से जानी जाती है। जो इस विषय के माहिर हों उनकी सम्मति से काम करना चाहिए, क्योंकि जिन तत्वों की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है वे यदि कुछ अधिक मात्रा में हो जायं तो हानि करते हैं।

उपर्युक्त तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में भूमि में पाये जाते हैं और जब सबका संतुलन अच्छा होता है और प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत साधन अनुकूल होते हैं तो फसल सोलह आना हो जाती है, परंतु सब यदा-कदा ही मिलते हैं किसी-न-किसीकी कमी रह ही जाती है; विशेषतः उस भूमि में जिससे बिना खाद के कई वर्षों तक फसलें ली जा चुकी हों। भूमि खाद्य-तत्वों का भंडार है और फसलें आवश्यकतानुसार तत्व लवणों के रूप में प्राप्त करती रहती हैं तो यह स्वाभाविक है कि जिन-जिन तत्वों का उपयोग विशेष होगा उनकी कमी होगी और संतुलन बिगड़ जायगा, जिसका असर भावी फसलों पर बुरा ही पड़ता है। इसलिए ऐसी कमी को पूरी करने के लिए खादें दी जाती हैं।

भूमि में से खाद्य-तत्वों का ह्रास फसलों द्वारा तो होता ही है, परंतु ह्रास के कुछ और भी मार्ग हैं। वर्षा का पानी जब खेतों में से बहकर जाता है तो वह भी घुलनशील खाद्य के लवण भूमि-कणों के साथ बहाकर ले जाता है। जब वर्षा का जल भूमि के नीचे की तह में जाता है तो उसके साथ भी कुछ तत्व नीचे चले जाते हैं और पौधों की पहुंच के बाहर हो जाते हैं। कभी-कभी जब खेतों की मिट्टी की भौतिक स्थिति अच्छी नहीं होती तो कुछ खाद्य-तत्व, विशेषतः नाइट्रोजन, भूमि से उड़कर वायुमण्डल में चली जाती है। ऐसी क्रिया को 'विनाइट्रीकरण' कहते हैं। यह क्रिया एक प्रकार के सूक्ष्म जंतुओं द्वारा होती है, विशेषतः उस भूमि में जिसमें हवा

का आवागमन ठीक से नहीं होता। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि खाद्य का ह्रास निम्न प्रकार से होता है।

(१) **फसलों द्वारा।**

(२) **वर्षा के जल द्वारा बहकर।**

(३) **वर्षा के जल के साथ भूगर्भ में रिसना।**

(४) **विनाइट्रीकरण द्वारा।**

पूर्ति निम्न प्रकार से होती है—

(१) **खाद डालकर**

(२) **प्रकृति द्वारा—**

(अ) सहयोगी सूक्ष्म जंतु द्वारा।

(आ) एक प्रकार के स्वतंत्र जंतुओं द्वारा।

(अ) जब खेतों में दलहन की फसलें ली जाती हैं तो उनकी जड़ों पर एक प्रकार के जंतु भूरी-भूरी गठानें बनाते हैं। वे पौधों से अपनी खुराक लेते हैं और बदले में वायुमंडल की नाइट्रोजन का संचय करते हैं। ऐसी संचित नाइट्रोजन के लवण बन जाते हैं और पौधे उनका उपयोग कर लेते हैं। यदि ऐसी फसलें गाड़ दी जायं तो भूमि का उर्वरापन बढ जाता है। यदि फसल काटली जाय और उसके पत्ते भी झडने दिये जायं तो भी लाभ होता है, परंतु यदि पूरी फसल काट ली जाय यानी पत्ते तक न झड़ने पायें तो भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा तो नहीं बढ़ती, परंतु फसलों के हेर-फेर से जैसा लाभ होता है हो जाता है।

(आ) भूमि में एक प्रकार के ऐसे जंतु भी रहते हैं कि जो वायुमंडल की नाइट्रोजन का उपयोग करके भूमि में उसकी मात्रा बढाते हैं। किसी-किसी भूमि में तो अनुकूल वातावरण में लगभग एक मन नाइट्रोजन प्रति एकड़ का संचय कर देते हैं।

(ई) कुछ नाईट्रोजन वर्षा के जल के द्वारा भी वायुमंडल से भूमि में आ जाती है, परंतु ऐसी मात्रा बहुत कम होती है

(३) बहुत-से तत्व ऐसे होते हैं जो अघुलनशील रूप में भूमि में रहते हैं

और धीरे-धीरे घुलनशील होते रहते हैं। जुताई, सिंचाई इत्यादि द्वारा ऐसे पदार्थों की घुलनशीलता बढ़ाई जाती है

(४) निंदाई भी एक ऐसी क्रिया है, जिससे खाद्य-तत्व बढ़ते तो नहीं परंतु इससे घासपात नष्ट हो जाते हैं और जो तत्व काम ले आते हैं बच जाते हैं।

खाद की जातियां

खाद दो प्रकार की होती हैं —एक कार्बनिक और दूसरी अकार्बनिक। कार्बनिक खाद वनस्पति से बनती हैं। उनमें न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सब तत्व पाये जाते हैं। अकार्बनिक कृत्रिम होती हैं और उनमें मुख्य-मुख्य तत्वों की मात्रा अधिक पाई जाती है।

कार्बनिक और अकार्बनिक खादों के गुण-दोष

कार्बनिक	अकार्बनिक
(१) असर धीरे-धीरे होता है।	(१) असर जल्दी होता है।
(२) गोबर जैसे खाद का असर तीन साल तक भी रहता है।	(२) नाइट्रोजन के खाद का असर पहली फसल में ही पूरा हो जाता है।
(३) भूमि की भौतिक स्थिति अच्छी बनी रहती है।	(३) खाद की जाति-अनुसार भूमि में अम्ल या क्षार की मात्रा बढ़ती जाती है। इससे यदि ऐसी खादों का उपयोग लगातार किया जाय तो भूमि की उपज गिरने लगती है।
(४) 'मायनर' तत्वों की पूर्ति होती रहती है।	(४) "मायनर" तत्वों की पूर्ति नहीं होती, जबतक वे न मिलाये जायं।

कार्बनिक	अकार्बनिक
(५) वर्षा के पानी के साथ जल्दी बहते नहीं।	(५) घुलनशील होने के कारण अधिक वर्षा हो जाय तो घुलकर बह जाती है।
(६) ये खाद अधिक मात्रा में देनी पड़ती है। इससे ढुलाई का खर्च बहुत बढ़ जाता है।	(६) थोड़ी मात्रा में डालनी पड़ती हैं, इससे ढुलाई का खर्च कम पड़ता है।
(७) सुभीते से फसल के बोने के पहले दे सकते हैं।	(७) बीज बोने के साथ-साथ या खड़ी फसल को देनी होती है।

वर्तमान समय में श्रम-प्रधान खेती बढ़ती जा रही है, जिसके लिए खाद अत्यंत आवश्यक वस्तु है। चूंकि कार्बनिक खाद का मेल पूरा-पूरा नहीं होता, इसलिए जहां तक बने दोनों के मिश्रण से काम लेना चाहिए।

तत्वों की प्रधानता के आधार पर खादों का विभाजन किया जाय तो मुख्य-मुख्य तत्वों की प्रधानता पर ही नाम होंगे, जैसे नाइट्रोजनपूर्ता, फास-फोरसपूर्ता, पोटाशपूर्ता अथवा यदि दो या तीन तत्वों के पूर्ता हों तो दोनों या तीनों के नाम दिये जायंगे, जैसे नाइट्रोजन-फासफोरसपूर्ता अथवा नाइट्रो-जन-फासफोरस और पोटाशपूर्ता। भारत की अधिकांश भूमि में सिर्फ दो तत्वों की कमी विशेष पाई जाती है। एक तो नाइट्रोजन और दूसरा फास-फोरस। पोटाश की कमी कहीं-कहीं पाई जाती है। न्यून तत्वों के बारे में अभी ऐसे प्रयोग इतने नहीं हुए हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि कौन-सी भूमि में कौन-कौन-से न्यून तत्वों की कमी है।

भूमि में तत्वों की कमी उसके विश्लेषण से और खाद कितनी और कौन-सी दी जाय यह भूमि के विश्लेषण तथा फसल की मांग के आधार पर जाना जा सकता है। दलहन की फसल को नाइट्रोजन की खाद नहीं चाहिए या बहुत कम चाहिए। इनके लिए फासफोरस की खाद विशेष उप-योगी होगी। अन्नों की फसलों को नाइट्रोजन की खाद विशेष मात्रा में चाहिए। अम्लदार भूमि में चूने की भी आवश्वकता होती है।

उपर्युक्त कथन से यह ज्ञात होगा कि हमें विशेषतः नाइट्रोजन, फास-फोरस, पोटाश तथा चूने की खादों की आवश्यकता है। इन तत्वों का फसलों पर कैसा असर पड़ता है, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है, ताकि जहां विश्लेषण की सुविधाएं न हों, वहां फसलों की देख-भाल से कौन-कौन-सी खादों की आवश्यकता है, यह जाना जा सके।

नाइट्रोजन—इससे पौधे स्वस्थ होते हैं और उनका गहरा हरा रंग बना रहता है। जब पौधे पीले पड़ने लगें तो समझना चाहिए कि इस तत्व की भूमि में कमी है। इसकी कमी से बीज पतले और कमज़ोर हो जाते हैं। इसीसे पौधों में आमिष-जातीय पदार्थ बनते हैं। इसका अधिक मात्रा में होना भी अच्छा नहीं होता, क्योंकि ऐसा होने से पत्तों की बाढ़ अधिक होकर फल और बीज कम आते हैं। कौन-कौन-सी फसल के लिए नाइट्रोजन की खाद कितनी दी जाय, यह लेखक की विभिन्न फसलों की खेती की पुस्तकों में दिया गया है। यहां तो यह कह देना उचित होगा कि फसल की जाति तथा उससे प्राप्त होनेवाली आय के अनुसार दस सेर से पचास सेर नाइट्रोजन पहुंचे इतनी खाद देनी चाहिए, यदि वह कृत्रिम अकार्बनिक अथवा खली के रूप में हो। यदि गोबर की खाद दी जाय तो उपर्युक्त नाइट्रोजन की मात्रा से दूनी मात्रा नाइट्रोजन की पहुंचे इतना खाद देना चाहिए।

नाइट्रोजन की खाद के लवण जब नाइट्रेट के रूप में दिये जायं तब तो पौधे उनका उपयोग कर सकते हैं; यदि कार्बनिक अथवा दूसरे किसी रूप में दिये जायं तो सूक्ष्म जंतुओं द्वारा इन पदार्थों का रूप बदलता है। कई प्रकार के जंतुओं के सहयोग से उन खादों के नाइट्रोजन का नाइट्रेट बनता है, तब पौधे उसका उपयोग करते हैं। धान जैसी फसल ऐसी है जो नाइट्रेट बनने के पूर्व नाइट्रोजन का जो एमोनिया बनता है उसका उपयोग भी कर लेती है। रूप-परिवर्तन की ऐसी क्रिया को नाइट्रोभवन या नाइट्री-करण की क्रिया कहते हैं।

फासफोरस—इस तत्व की खादों से बीज पुष्ट होते हैं। फसल जल्दी पकती है। प्रारंभ में जब पौधे छोटे होते हैं तो उनकी जडों का फैलाव

अच्छा होता है, जिससे वे अधिक खाद्य पदार्थ प्राप्त कर सुदृढ़ हो जाते हैं।

जब पौधे हरे हों और छोटे-छोटे रह जायं तो समझना चाहिए कि इस खाद की आवश्यकता है। इसकी खादें हड्डी या फासफोरसवाली खदानी मिट्टी को छोड़कर अधिकांश में कृत्रिम ही मिलती हैं। फसल की जाति-अनुसार बीस सेर से चालीस सेर 'फासफोरस पेंटाक्साइड'[1] पहुंचे, इतनी खाद देनी चाहिए।

पोटेशियम—कहीं-कहीं विशेषतः आलू, बैंगन इत्यादि फसलों के लिए इसकी आवश्यकता होती है। सब जगह नहीं होती। लेखक के पूसा (बिहार) के कुछ प्रयोगों में तो पोटाश की खाद उपज की दृष्टि से भी अच्छी नहीं पाई गई, लाभ की तो बात ही अलग रही। जहां लाभप्रद सिद्ध हो वहां पच्चीस सेर पोटेशियम आक्साईड पड़े इतनी खाद देनी चाहिए।

केलशियम (चूना)— इससे अम्लदार भूमि में अम्ल की शांति होती है। इसकी उपस्थिति में नाइट्रीकरण की क्रिया अच्छी होती है, इसलिए अम्लवाली मिट्टी में इसे डालना चाहिए।

खाद्य तत्व—फसलें खाद्य तत्वों को अपनी जड़ों द्वारा भूमि से लेकर अपना पोषण करती हैं परंतु कुछ खादें ऐसी भी हैं जो परोक्ष रूप से पौधों की बाढ़ में सहायक होती है। ऐसी खाद को हम परोक्ष खाद कह सकते हैं और दूसरी को अपरोक्ष। कुछ खाद परोक्ष और अपरोक्ष दोनों रूप में काम आती हैं। कार्बनिक खाद के तत्वों का उपयोग पौधे अपरोक्ष रूप में करते हैं और ऐसी खादों की उपस्थिति में नाइट्रोजन-संचय-कर्ता सूक्ष्म जंतु अपना काम अधिक करते हैं। इससे ऐसी खादों से परोक्ष रूप से भी लाभ पहुंचता है। कुछ वस्तुएं ऐसी हैं, जैसा कि "केलशियम सलफेट", जिसे ऊसर भूमि में

[1] फासफोरस के विश्लेषण के अंक 'फासफोरस पेंटाक्साइड' (फा० पे० P_2O_5) और पोटाश के 'पोटेशियम आक्साईड' (पो० आ० K_2O) के रूप में दिये जाते हैं।

डालने से उसकी स्थिति सुधर जात है और भूमि फसलें उपजाने योग्य हो जाती है। ऐसी वस्तुओं की गणना परोक्ष खाद में होगी। चूना परोक्ष और अपरोक्ष दोनों प्रकार की खाद हुआ। क्योंकि पौधे इसका उपयोग करते हैं, इससे यह अपरोक्ष खाद हुआ। दूसरी ओर नाइट्रीकरण की क्रिया में लाभ पहुंचता है, इससे परोक्ष हुआ।

साधारणतः खाद से उन्हीं वस्तुओं का बोध होता है जो अपरोक्ष रूप से काम में आती हैं। ऐसी खाद का विभाजन कार्बनिक और अकार्बनिक ऐसे दो भागों में हो सकता है।

कार्बनिक	मात्रा खाद्य तत्व शतांश (लगभग[1])				
नाइट्रोजन-प्रधान—					
(१) पशुओं के मलमूत्र और गोबर की सड़ी हुई खाद	जल ४०	ना. ०·५	फा. पे. ०·३	पो. आ. ० ६	
(२) काम्पोस्ट—जिस प्रकार की वस्तुओं से बनता है, उनके तत्वों के आधार पर इसके तत्व निर्भर हैं। साधारणतः गोबर की खाद के समान मान सकते हैं।					

[1] कार्बनिक खाद पशुओं के मलमूत्र अथवा वनस्पति से बनती हैं। मलमूत्र में खाद्य-तत्वों की मात्रा पशुओं की जाति, उनकी आयु उनके खान-पान तथा खाद को रखने की रीति पर निर्भर है। भेड़-बकरी की खाद गाय-बैल के खाद से अधिक उर्वर होती है। बच्चों के मलमूत्र की अपेक्षा बड़े पशुओं के मलमूत्र में खाद्य-तत्व अधिक रहते हैं। दाना न खाने-वाले पशु की अपेक्षा दाना खानेवाले पशुओं की खाद उत्तम होती है। वर्षा और धूप से बचाई हुई खाद विशेष गुणकारी होती है।

वनस्पतियों में उनकी जाति-अनुसार खाद्य-तत्व न्यूनाधिक होते हैं, इसलिए खाद्य तत्व 'लगभग' ही माने जा सकते हैं।

नाईट्रोजन-प्रधान	मात्रा खाद्य-तत्व शतांश (लगभग)			
	जल	ना०	फा. पे.	पो. आ.
(३) हरे तथा सूखे पत्तों की खाद (सूखे पत्तों में)		१·५	०·२	०·४
(४) हरी खादें—मात्राएं हरी खादों के वर्णन में दी गई हैं।				
(५) मनुष्यों का मल	७०	१·०	१·१	०·२५
,, ,, मूत्र	९५	०·६	०·२	०·२
(६) स्लज सूखी हुई		३ से ५	२ से ३	०·५ से १.०
(७) पक्षियों की विष्ठा		४·०	२·३	१.२
(८) चमगीदड़ की विष्ठा	८	३·८	१·३	१.२
खलियां				
पशुओं को खिलाई जानेवाली				
मूंगफली		७.६	२.३	२.२
सरसों		५.६	१.९	१.४
कुसूम		५.८	१.३	१.२
अलसी		५.०	१.६	१.६
तिल		५.०	१.१	१.०
रामतिली		४.५	२.०	१.९
नारियल		३.७	१.९	१.८
बिनौला (कपास के बीज छिलका, सहित की खली)	२.९		१.२	१.१
एरंडी	५.०		१.८	१.६
नीम	४·४		१.०	१.४
करंज	३.५		०.७	१.३
महुआ	२.६		०.८	२.८

नाइट्रोजन-प्रधान	मात्रा खाद्य-तत्व शतांश (लगभग)		
	ना०	फा. पे.	पो. आ.
(१०) मछलियों का खाद	८.०	६.०	
फासफोरस-प्रधान			
हड्डी का चूरा	३.८	२३.२	०.१
ग्वानो बगैर धुला हुआ	४·५	४.८	
बरसात से धुला हुआ		७–९	
पोटेशियम- धान			
तम्बाकू के डंठल			४.९
सेवार (सूखे पदार्थ में)	१	०·४	२.०
अकार्बनिक खाद			
नाइट्रोजन-पूर्ता			
सोडियम नाइट्रेट	१५.०		
एमोनियम सलफेट	२०.०		
एमोनियम क्लोराइड	२५.०		
एमोनियम नाइट्रेट	३५.०		
केलशियम सायना माईड	२०.०		
यूरिसा	४४.०		
एमोनियम सलफेट नाइट्रट	२६.०		
फासफोरस-पूर्ता			
सुपर फासफेट सिंगल		२०.०	
" " डबल या ट्रिपल		४०-४५	
बेसिक स्लेग		१६-१८	
पोटेशियम-पूर्ता			
पोटेशियम सलफेट			४८.०
" क्लोराईड			५०.०

नाइट्रोजन और फासफोरस-पूर्ता	मात्रा खाद्य-तत्व शतांश (लगभग)		
	ना०	फा. पे.	पो. आ.
एमोफास	१३.०	४८.०	
डायमन फास	२१.०	५४ ०	
नाइट्रोजन और पोटेशियम-पूर्ता			
पोटेशियम नाइट्रेट	१४.०	४८.०	
फासफोरस और पोटेशियम-पूर्ता			
राख		२.०	४-६
नाइट्रोजन और पोटेशियम-पूर्ता			
नाइट्रोफोस्का	१५.०	१५.०	२०.०
खदानी फासफेट		२० से २५	

उपर्युक्त सूची में खाद्य-तत्वों की मात्राएं दी गई हैं, जिनके आधार पर कौन-सी फसलों के लिए कौन-सी खाद कितनी देनी होगी, इसकी गणना की जा सकती है।

विभिन्न खादों की तुलनात्मक दृष्टि से प्रथम वर्ष में उपजाऊ शक्ति—

नाइट्रोजनवाले		फासफोरसवाले		पोटेशियमवाले	
एमोनियम सलफेट[1]	१००	सुपर फासफेट	१००	पोटेशियम सलफेट	१००
सोडियम नाइट्रेट	९८	हड्डी का चूरा	८०[2]	क्लोराई	८०

१. रबी की फसल के लिए जिस साल फसल की बाढ़ के समय एक-दो बार वर्षा हो जाय तो, एमोनियम सलफेट अच्छा होता है, नहीं तो सोडियम नाइट्रेड।

२. अम्लवाली मिट्टी में हड्डी के चूरे का असर पहले साल में ही १०० मान सकते हैं।

नाइट्रोजनवाले	फासफोरसवाले	पोटेशियमवाले
खलियों की खाद [1] ८०-१००		राख ५०
गोबर की खाद ५० से६०		

कार्बनिक खादों पर कुछ विशेष जानकारी

गोबर की खाद—इस खाद से पौधों को भोजन ही नहीं मिलता, बल्कि भूमि की दशा भी सुधर जाती है। भूमि में लाभप्रद सूक्ष्म जंतुओं की संख्या भी इससे बढ़ जाती है, जिनके द्वारा भूमि का उर्वरापन बढ़ता है। इस खाद का असर कम-से-कम तीन साल तक रहता है। इसे खेतों में डालते समय बहुधा कृषक छोटी-छोटी ढेरियां बनाकर कुछ दिनों के लिए छोड़ देते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। खेतों में डालते ही मिट्टी में मिला देना चाहिए नहीं तो उन ढेरियों से नाइट्रोजन का कुछ भाग एमोनिया के रूप में उड़कर वायुमंडल में चला जाता है।

गोबर की खाद गढ़ों में रखनी चाहिए। दो जोड़ी पशुओं की सालभर की खाद रखने के लिए ८′ × ८′ × ४′ का गढ़ा काफी होता है। ऐसे गढ़े की फर्श पर मोरम डालकर उसे पिटवा देना चाहिए ताकि खाद का सार भाग मिट्टी में गहरा न चला जाय। हो सके तो बग़ल की दीवालें भी पक्की बनवा देनी चाहिए ताकि बगल की मिट्टी में भी न सोखे।

गोबर की खाद को ढेरी पर डालते समय यदि उसपर एक शतांश

---

१. खलियों की उपयोगिता का क्रम—

पहली श्रेणी—एरंडी, रामतिली, तिली, सरसों, अलसी, करंज

दूसरी श्रेणी—नीम, मूंगफली, कुसुम, बिनौला, खोपरा

तीसरी श्रेणी—महुआ, ताजी हो तो सड़ाकर ही देनी चाहिए। पुरानी हो तो वैसे ही काम दे देती है।

सुपरफासफेट[1] बिखेरा जा सके तो नाइट्रोजन का कुछ भाग जो वायुमंडल में चला जाता है वह बहुत अंश तक बच जाता है।

काम्पोस्ट—हरे सूखे पत्ते, निराई के समय खेतों में से निकाले हुए घास-पात, फसलों की खूटियां इत्यादि को विशेष रूप से सड़ाकर जो खाद बनाई जाती है उसे काम्पोस्ट कहते हैं। काम्पोस्ट में तीन प्रकार की वस्तुएं काम में आती हैं। हरी और कोमल वस्तुएं, जैसे सागभाजी के बेकार पत्ते और खेतों का घासपात। दूसरी, हरी लेकिन कुछ कठोर जैसे काट-छांट-वाली टहनियां और तीसरी सूखी आर कठोर जैसे कपास की डंडिया। काम्पोस्ट बनाने में पहले दो प्रकार की वस्तुएं बराबर भाग में मिलानी चाहिए। यदि तीसरी भी मिलानी हो तो पहली-दूसरी के दो भाग में तीसरी का एक भाग डालना चाहिए। ऐसे मिश्रण की ढेरी सात-आठ फुट चौड़ी और ढाई-तीन फुट ऊंची होनी चाहिए, ताकि उलट-फेर सरलता से हो सके। ढेरी को बनाते समय उसमें गोबर का पानी मिलाना चाहिए। खाद का ५ शतांश गोबर पानी में मिलाकर ढ़ेरी पर छीट देना चाहिए। ढेरी को गीली रखने के लिए उसपर पानी छोड़ते रहना चाहिए। ऐसी ढेरी का प्रति मास उलट-फेर दतारी से कर देना चाहिए, ताकि वह जल्दी सड़ जाय। अच्छे सड़े हुए काम्पोस्ट का असर गोबर के खाद के समान ही होता है।

इंदौर में साधारण काम्पोस्ट के सिवाय एक दूसरी युक्ति भी निकाली है, जिसमें मैले का उपयोग भी हो जाता है। ऐसे काम्पोस्ट को सेनीटरी काम्पोस्ट[2] कह सकते हैं।

इसमें १५ फुट चौड़ी, २ फुट गहरी और आवश्यकतानुसार लंबी एक

[1] Study of the losses of fertilising constituents from cattle dung during storage and a method for their control by N.D. Vyas. Agri. Livestock in India vol. I Part 1 January 1931

[2]. Institute of Plant Industry, Indore Bulletin No. 1, 1934.

खाई, जिसकी फर्श मिट्टी या ईंटों के टुकड़ों से पीटी हुई हो बना ली जाती है। इसमें एक गाड़ी घासपात (लगभग ३५ घन फुट) एक तरफ से डाल-कर उसे बिछा देते हैं, जिसमें तीन-चार इंच की तह हो जाय। इसपर एक गाड़ी मैला, (सात-साढ़े सात मन) मैले की गाड़ी से गिरा दिया जाता है। इसके ऊपर फिर घासपात डालकर सबको दतारी से मिला देते हैं। इसी तरह से दो दिन में आठ तह बनाकर अंतिम तह घासपात की दी जाती है। इसी तरह लंबाई की ओर भरते हुए चले जाते हैं।

पहले दिन के काम्पोस्ट को चौथे दिन दतारी से उलट-फेर करते हैं और आवश्यकता होने से पानी भी देते हैं। आठ दिन बाद फिर उलट-फेर किया जाता है। तीसरी उलट-फेर दूसरी के १५ दिन बाद की जाती है और बाद में काम्पोस्ट की ढेरी बनाकर छोड़ देते हैं। ऐसी खाद तीन सप्ताह से लेकर आठ सप्ताह में तैयार हो जाती है।

(३) **हरे तथा सूखे पत्तों की खाद**—मद्रास की तरफ धान के खेतों में हरे सूखे पत्तों की खाद भी दी जाती है। करंज, अकौन आदि के पत्ते काम में लाये जाते हैं।

(४) **हरी खाद**—गोबर की खाद की कमी से हरी खाद का उपयोग किया जाने लगा। इसके लिए खेत में हरी फसलें उपजाकर जब उनमें फूलों की कलियां आने लगें अथवा जब वे दो-एक महीने की हो जायं तो उन्हें खेतों में गाढ़ देते हैं। ऐसी खाद के लिए विशेषतः दलहन की फसलें अच्छी होती हैं। ऐसी फसलें चुनने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे जल्दी बढ़नेवाली हों और उनमें कोमल अंग अधिक हों ताकि वे जल्दी सड़ जायं। हरी खाद के गाढ़ने में और दूसरी फसल के बोने में लगभग दो माह का अंतर होना चाहिए और गाढ़ने के बाद लगभग तीन-चार इंच पानी भी हो जाना चाहिए ताकि गड़ी हुई खाद सड़ जाय। जहां पानी कम हो वहां सिंचाईवाले खेतों में ही हरी खाद देनी चाहिए।

दलहन की फसलों की हरी खाद के लिए बीज कितने और कैसे बोये जाते हैं और उनसे कितनी खाद मिलती है, नीचे की सारणी में दिया गया है।

हरी खाद के काम में लाई जानेवाली मुख्य-मुख्य फसलों के बीज की मात्रा, बोने की रीति, फूलते समय की उपज, उसमें जल तथा अन्य खाद्य पदार्थों की मात्रा नीचे लिखी सारणी में देखिये—

नाम फसल	मात्रा बीज प्रति एकड़	बोने की रीति	उपज प्रति एकड़ हरे पदार्थ की	जल %	खाद्य पदार्थ सूखे पदार्थ में			
					ना. %	फा.पे. %	पो. आ. %	चूना %
सन	३० सेर से १ मन	छींट कर	१०० से ३०० मन	७५	२.५	०.५	२.०	२.५
ढेंचा [1]	१ मन	छींट कर	१०० से २५० मन	७५	१.६	०.४	१.८	१.६
ग्वार	१५ सेर	छींट कर या कतारों में	१०० से २०० मन	८०	३.०	०.५	१.८	०.४
चवला	२० सेर	कतारों में	१०० से २०० मन	८०	२.५	०.७	२.७	३.०
सेंजी	२० सेर	छींट कर	१५० से २०० मन	७५	३.०	०.४	२.५	—
पिली पसेरा	१५ सेर	छींट कर	१२५ से २०० मन	७५	०.५	—	—	—
उड़द	१० सेर	कतारों में	८० से १०० मन	७५	३.४			

१. बीज के लिए जो ढेंचा बोया जाय, उसके बीज ८-१० सेर प्रति एकड़ कतारों मे वर्षारंभ के समय बोना चाहिए। कतारों में डेढ़-दो फुट की दूरी उत्तम होगी। उपज बीज १२ से १५ मन तक हो जाती है। फसल ४–५ महीने में तैयार हो जाती है।

(५) **मनुष्यों का मलमूत्र**—गांवों में,जहां पखानों की व्यवस्था नहीं होती, जनता बहुधा खेतों में ही प्रातः-क्रिया के लिए जाती है। ऐसे लोगों को चाहिए कि पखाना फिरने के बाद मैले पर मिट्टी डाल दिया करें। ऐसा करने से खाद के कुछ तत्व हवा में उड़ने नहीं पाते और वातावरण की वायु भी दूषित नहीं हो पाती।

शहरों में कहीं-कहीं मिट्टी के साथ मैले को सड़ाकर उसे पुडरेट के नाम से बेचते हैं।

(६) **स्लज**—जहां पानी की प्रचुरता होती है, वहां ऐसे पखाने बनाये जाते हैं कि पखाने आप-से-आप धुल जाते हैं और सब मैला घोल के रूप में एक स्थान पर ले जाकर वहां कुछ क्रियाओं द्वारा उसका विच्छेदन कराया जाता है। पानी सिंचाई के काम में ले आते हैं और गाद, जिसे स्लज कहते हैं, खाद में काम आती है।

कहीं-कहीं म्यूनिसिपालिटी के कचरे के साथ सड़ाकर काम्पोस्ट बनाते हैं जिसे 'सेनिटरी काम्पोस्ट' कहते हैं।

(७) **पक्षियों की विष्ठा**—मुर्गियां, कबूतर आदि जो पाले जाते हैं, उनकी विष्ठा की खाद भी अच्छी होती है। ऐसी विष्ठा को मिट्टी के साथ मिलाकर रखना चाहिए।

(८) **चमगीदड़ की विष्ठा**—कई वृक्षों पर चमगादड़ अपना स्थायी निवास बना लेते है। ऐसे वृक्षों के नीचे की मिट्टी भी खाद के लिए अच्छी होती है। इसमें ८% जल, ३·८%ना०, १·३% फा० पो० और १·२% पो० आ० रहता है।

कहीं-कहीं समुद्र के टापुओं पर पक्षी बैठा करते हैं। वहां उनकी विष्ठा गिरती रहती है। जहां के टापुओं पर पानी नहीं गिरता वहां की विष्ठा में नाइट्रोजन, फासफोरिस और पोटेशियम तीनों रहते हैं, परंतु जहां वर्षा होती है वहां के खाद से नाइट्रोजन और पोटाश बहुत अंश तक धुल जाते हैं। ऐसे खाद में फा० पे० की मात्र ८% तक बढ़ जाती है। पहले में ४% ना०, २·३% फा० पे० और १·२% पो० आ० रहते हैं।

(९) **खलियों की खाद**—भारत में तिलहन की फसलें कई प्रकार की होती हैं। फसलों से ही नहीं, करंज, महुआ आदि वृक्षों से भी तेल के बीज मिलते हैं। इनमें से जब तेल निकाल लिया जाता है तो जो पदार्थ बचता है वह खली कहलाता है। कुछ खलियां जहरीली होती हैं जैसे—एरंडी, करंज, नीम, महुआ आदि। ये पशुओं को नहीं खिलाई जातीं। ये खाद के लिए अच्छी होती हैं। दूसरी खलियां भी खाद के काम आ सकती हैं। परंतु वे पशुओं को खिलाने योग्य होती हैं, सो वे खिलाने के काम आती हैं और अंत में उनका भी बहुत-कुछ अंश गोबर के रूप में खाद के काम में आ ही जाता है। खलियों में खाद्य-तत्वों की मात्रा तथा उनकी उपयोगिता का वर्णन पीछे दिया जा चुका है।

(१०) **मछलियों की खाद**—जहां मछलियों का व्यवसाय चलता है वहां सड़ी-गली मछलियों की खाद मिल जाती है। इसकी खाद भी बड़ी अच्छी होती है। इससे नाइट्रोजन और फारसफोरस दोनों की पूर्ति होती है। सूखी खाद में लगभग ८·०% ना० और ६·०२ शतांश फा० पे० रहता है।

फारसफोरस-प्रधान

(१) हड्डी का चूरा और हड्डी की राख ऐसी दो प्रकार की खादें हड्डी की होती हैं। हड्डियों को भाप से गरम करके उसमें से जिलेटिन नाम का पदार्थ निकाल लेते हैं। ऐसा करने से हड्डी का चूरा सरलता से बन जाता है। ऐसे चूरे में लगभग ३·८% ना०, २३·०% फा० पे० और ३१·०% केलशिय आक्साईड (चूना) रहता है। हड्डियों को जलाकर राख बनाई जाती है। उसमें से नाइट्रोजन का भाग उड़ जाता है। ऐसी राख में लगभग ३५% फा० पे० और ४०% चूना रहता है।

(२) **पक्षियों की विष्ठा** :—इसका वर्णन पहले दिया जा चुका है।

पोटेशियम-प्रधान

१. **तंबाकू के डंठल**—इनमें चार-पांच शतांश पो० आ० रहता है। इनका चूरा करके काम में ला सकते हैं।

२. **सेवार**—जल में होनेवाली वनस्पति नदी, नाले और तालाब में पाई जाती है। लेखक ने प्रयोग करके देखा तो इनकी खाद भी अच्छी पाई गई। सूखे पदार्थ में लगभग १% ना०, ०·४% फा० पे० और २·०% पो० आ० रहता है।

खाद के मिश्रण

गोबर या काम्पोस्ट जैसी खाद तो वैसे ही डाली जाती हैं और बाद में कृत्रिम खाद डालते हैं। कृत्रिम खादों का फसलों की जाति-अनुसार मिश्रण भी बनाया जाता है जैसे पत्ते व फूलवाली फसलों के लिए ५-१०-५ वाला मिश्रण। जड़ व कंदवाली के लिए २-८-१० तथा फलवाली के लिए ४-८-८ वाला मिश्रण अच्छा होता है। इन अंकों का अर्थ यह हुआ कि एक सौ भाग खाद में ५ भाग नाइट्रोजन १० भाग फा० पे० और ५ भाग पो० आ० पहले मिश्रण में होगा, उसी भांति दूसरे में २ भाग ना० ८ भाग फा० पे० और १० भाग पो० आ० और तीसरे में क्रमानुसार इन तत्वों की मात्रा ४-८-८ होगी।

ऐसे मिश्रण विशेषतः कृत्रिम खाद यानि अकार्बनिक एमोनियम सलफेट, सुपरफासफेट तथा पोटेशियम सलफेट के मिश्रण से बनते हैं। हमारे यहा खलियों के साथ मिश्रण बनाना अच्छा जंचता है, इसलिए दोनों प्रकार के मिश्रण बनाने की युक्तियां यहां दी जाती हैं।

उदाहरण के लिए हम पहला मिश्रण ही बनाते हैं, जिसका सूत्र ५-१०-५ है।

(१) कृत्रिम खाद का मिश्रण

एमोनियम सलफेट में २० शतांश ना० रहती है तो हमें ५ भाग के लिए $\frac{१०० \times ५}{२०}$ = २५ भाग एमोनियम सलफेट लेना चहिए।

सुपरफासफेट में भी २० शतांश फा० पे० होता है तो उसके ५० भाग लेने होंगे।

पोटेशियम सलफेट में ४८% पो० आ० रहता है।

सौ भाग के लिए $\frac{१०० \times ५}{४८} = १०·४$ भाग पोटेशियम सलफेट लेना होगा

अर्थात

२५—५०—१०·४ भाग तीनों खाद के मिलकर ८५·४ भाग हुए। १०० भाग पूरे करने के लिए इसमें १४.६ भाग खड़ीया मिट्टी मिला देनी चाहिए। ऐसे १०० सेर मिश्रण से हमें ५ सेर ना०, १० सेर फा० पे० और ४ सेर पो० आ० मिल जायंगे।

(२) खलियों के साथ कृत्रिम खाद के मिश्रण

इसके लिए हम एरंडी की खली, सुपरफासफेट और पोटेशियम सलफेट लेते हैं।

	ना०	फा० पे०	पो० आ०
एरंडी की खली	५%	१.८%	१.६%
सुपरफासफेट	—	२०.०%	—
पोटेशियम सलफेट	—	--	४८%

मानलो हमें २५ सेर नाइट्रोजन, ५० सेर फा० पे० और २५ सेर पो० आ० प्रति एकड़ देना है तो २५ सेर ना० के लिए हमें—

$$५ : २५ :: १०० = \frac{२५ \times १००}{५} = ५०० \text{ सेर खली लेनी होगी।}$$

अब ५०० सेर खली से हमें फा० पे० और पो० आ० कितना मिलता है, इसे गिनना है।

$$१०० : ५०० :: १·८ = \frac{१·८ \times ५००}{१००} = ९ \text{ सेर फा० पे० और}$$

$$१०० : ५०० :: १·६ = \frac{५०० \times १·६}{१००} = ८ \text{ सेर पो० आ० मिले}$$

५०० भाग खली से हमें २५ सेर ना०, ९ सेर फा० पे० और ८ सेर पो० आ० मिले।

उपर्युक्त सूत्र का मिश्रण बनाने के लिए हमें अब ५०—९=४१ सेर फा० पे० और २५—८= १७ सेर पो० आ० चाहिए । ये मात्राएं हमें सुपरफासफेट और पोटेशियम सालफेट से लेनी हैं ।

२० : ४१ :: १०० = $\frac{१०० \times ४१}{२०}$ = २०५ सेर सुपरफासफेट

४८ : १७ :: १०० = $\frac{१०० \times १७}{४८}$ = ३५.४ सेर पोटेशियम सलफेट लेना होगा ।

अब हम तीनों का मिश्रण बनायें तो हमारे पास

खली ५०० सेर
सू० फा० २०५ "
पो० स० ३५.४"
७४०.४ सेर मिश्रण हुआ

यदि हम इस मिश्रण में २५९.६ खड़िया मिट्टी मिलादें तो हमारे पास उपर्युक्त सूत्रवाला यानी ५-१०-५ वाला मिश्रण बन जायगा ।

खाद देने की रीति—गोबर या काम्पोस्ट जैसी खाद गाड़ियों में भर-कर खेतों में डालते हैं । इसकी छोटी-छोटी ढेरियां बनाकर खाद बिखेर दी जाती है और जुताई कर देते हैं तो खाद मिल जाती है । खली जैसी खाद, जो कम मात्रा में दी जाती है, बीज बोने के पहले खेतों में उन्हें चूर्ण के रूप में छींट देना चाहिए या खड़ी फसल को भी दे सकते हैं । कृत्रिम खाद भी खली जैसे ही दी जाती है । ऐसी खाद पौधों से दो-एक इंच की दूरी पर देनी अच्छी होती है ।

हरे खाद का जहां प्रश्न है वहां तो समूची फसल गाढ़ दी जाती है ।

५—फसलों का हेरफेर और मिश्रण

१. लगातार एक खेत से एक ही जाति की फसल लेते रहने से उस खेत की मिट्टी से उन तत्वों का विशेष ह्रास हो जाता है, जिनकी उस फसल को चाह रहती है । धीरे-धीरे उस मिट्टी के तत्वों की संतुलनता बिगड़ जाती

है और उपज कम हो जाती है। ऐसी संतुलनता को बनाये रखने के लिए फसलों का हेरफेर अत्यंत आवश्यक है।

यहांपर यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि भूमि में जो तत्व रहते है वे दो प्रकार के होते हैं—एक घुलनशील, दूसरे अघुलनशील। पौधे घुलनशील पदार्थों का ही उपयोग करते हैं। प्रकृति धीरे-धीरे अघुलनशील पदार्थों को घुलनशील बनाती रहती है। ऐसी स्थिति में फसल के हेरफेर से यदि एक फसल कुछ दिनों बाद उस खेत में आये तो उसमें उस फसल की आवश्यकतानुसार अघुलनशील से घुलनशील पदार्थ बनाने का प्रकृति को समय मिल जाता है।

२. फसलों के हेरफेर से भूमि की जुताई में भी हेरफेर हो जाता है। किसीके लिए गहरी तो किसीके लिए उथली जुताई करनी होती है। इससे भूमि की भौतिक स्थिति अच्छी बनी रहती है।

३. घास-पात के बीज नष्ट करने का अवसर अच्छा मिल जाता है। जब खरीफ की फसल के साथ रबी का हेरफेर होता है तो खरीफ में होनेवाले घास-पात के बीज बरसात में निकल आते हैं और बरसात की बार-बार की जुताई से वे नष्ट हो जाते हैं और खेत साफ हो जाते हैं।

४. एक ही प्रकार की फसल लेते रहने से उस फसल पर बसर करनेवाले कीट और जंतु बने ही रहते हैं, क्योंकि उनको भोजन मिलता रहता है। हेरफेर से ऐसे कीट और जंतु भी नष्ट हो जाते हैं।

५. हेरफेर से कृषकों को एक खास मौसम में अथवा एक प्रकार की खेती के लिए विशेष बोझ या मेहनत नहीं पड़ती। उनका कार्यक्रम साधारण रीति से चलता रहता है।

हेरफेर का क्रम

जहां वर्षा के आधार पर खेती होती है, वहां यह कार्यक्रम नियमपूर्वक नहीं चल सकता, क्योंकि यदि अधिक वर्षा से खरीफ की फसल नष्ट हो गई तो उसी साल खेत तैयार करके रबी की फसल बोनी होगी, यद्यपि ऐसी फसल

को दूसरे साल ही आना चाहिए। साधारणतः निम्नलिखित सिद्धांत उत्तम होंगे—

(१) जहां खरीफ और रबी की फसलें हो सकती हैं वहां दो साल तक खरीफ की फसलें लेने के बाद तीसरे साल रबी की फसलें लेना उत्तम होगा। इस क्रम से खेत साफ, घास-पातरहित बने रहेंगे।

(२) गहरी जड़वाली के बाद उथली जड़वाली आनी चाहिए, ताकि भूमि के विभिन्न तहों से खाद्य-तत्व मिलते रहें। सागभाजी की खेती में कंद-वाली के बाद पत्तेवाली और उसके बाद फलवाली लेनी चाहिए।

(३) जिन स्थानों में खरीफ की फसलें ही हो सकती हों वहां धान्य या द्रव्यदायी फसलों के बाद दलहन की फसलें लेनी चाहिए। उसी भांति जहां रबी की प्रधानता हो वहां भी ऐसा ही क्रम होना चाहिए।

मिश्रण—(१) भारत में मिश्रित फसलें लेने की प्रथा भी है। इसमें एक विशेष लाभ यह होता है कि यदि एक फसल बिगड़ी या व्याधिग्रस्त हो गई तो दूसरी सम्हल जाती है और कृषक पूर्ण हानि से बच जाते हैं।

(२) मिश्रण से खास फसल का कीट से भी बचाव हो जाता है। कपास में भिंडी रहने से भिंडी पर कीट अधिक आ जाते हैं। उसी भांति यदि गेहूं में चने डाल दिये जायं तो चूहे चने में लग जाते हैं और गेहूं काटकर हानि नहीं पहुंचाते।

(३) ज्वार के साथ तूवर और मूंग का मिश्रण डाला जाय तो ज्वार के भुट्टे ऊपर बीच में तूवर और नीचे मूंग अच्छे बैठ जाते हैं। ज्वार काटने के पहले मूंग काट लिये जाते हैं और ज्वार के कुछ दिन बाद तूवर काट ली जाती है। इस रीति से तीनों चीजें मिल जाती हैं।

(४) गन्ना खोदने के साथ-साथ पारियों पर प्याज के रोप लगा दिये जायं तो गन्ने को बिना विशेष हानि पहुंचाये प्याज की फसल हाथ लग जाती है।

(५) साग-भाजी की खेती में बहुधा मिश्रण लगाया जाता है। क्यारियों में मुख्य फ़सल और पारियों पर धनियां, लहसुन आदि लगा देते हैं। ऐसा

करने से तीनों फसलें एक दूसरी को हानि पहुंचाये बिना मिल जाती हैं।

६—बीज और बोआई

बीज—साधारणतः बीज से उस वस्तु का ज्ञान होता है, जो दाने के रूप में होता है और यदि बो दिया जाय तो अंकुर फेंककर नया पौधा पैदा कर दे, परंतु कृषकों के लिए बीज से सिर्फ दाने का अभिप्राय नहीं होता, बल्कि पौधों के उन अंगों से भी है जो यदि लगाये जायं तो नये पौधे उत्पन्न कर दें। जैसे आलू, गन्ना, हल्दी इत्यादि।

फसल की उपज पर बीज का बहुत अधिक असर पड़ता है। जहां दाने बोने का प्रश्न है, वहां यह देखना चाहिए कि वह भारी हो, व्याधि के जंतुओं से रहित हो। कीट द्वारा हानि पहुंचाया हुआ न हो और शुद्ध हो, अर्थात् उसमें दूसरे बीजों का मिश्रण न हो। जहां पौधों के अंग लगाये जाते हैं, वहां पर देखना चाहिए कि वे अंग पुष्ट और व्याधिरहित हों। जहांतक बने बीज कृषि-विभाग द्वारा खरीदने चाहिए या अपनी उपज के बीज चुनकर रखने चाहिए।

बीज बोना या लगाना—दानेवाले बीज बोये जाते हैं। शेष नर्सरी में पौधों के अंग या रोप लगाये जाते हैं। रोप नर्सरी में बीज बोकर तैयार किये जाते हैं।

बीज हाथ से या छींटकर या यंत्रों से बोये जाते हैं। जब थोड़ी जगह में बोना होता है, तो हाथ से बो देते हैं। सागभाजी के बीज हाथ से बो दिये जाते हैं, जैसे लौकी, तरबूज इत्यादि। कुछके रोप नर्सरी में तैयार किये जाते हैं जैसे धान, गोभी इत्यादि। कुछ छोटे बीज ऐसे भी होते हैं, जिन्हें छींटकर ही बोते हैं, जैसे बरसीम, लूसर्न, खसखस। कहीं-कहीं गेहूं के बीज भी छींटकर बोये जाते हैं, क्योंकि ऐसा करने से सब जगह घिर जाती है और पौधों को बराबर स्थान मिल जाता है। कतारों में बोने से एक ओर तो स्थान अधिक मिल जाता है और दूसरी ओर चांस में बिलकुल नहीं मिलता। बरानी खेतों में बीज गहरे बोने होते हैं सो उन्हें यंत्रों से ही बोते हैं।

जहां पौधों के अंग लगाये जाते हैं, वहांपर देखना होता है कि जो भाग लगाये जायं उनमें दो-तीन आंखें अर्थात् अंकुर फेंकनेवाले अंग हों। गन्ना, आलू, अदरक इत्यादि के अंग ही लगाने होते हैं।

बीज कतारों में बोने से विशेष लाभ यह होता है कि खेतों में से घास-पात कतारों के बीच की भूमि में से यंत्रों द्वारा कम खर्च से निकाले जा सकते हैं।

बीज बोने के यंत्र

१. **हलका हल**—बहुत-से स्थानों में हलके हल से कूंड या चांस बनाकर उनमें बीज हाथ से गिरा दिये जाते हैं और बाद में किसी पेड़ की टहनी को जूए से बांधकर खेतों में फिरा देते हैं, जिससे बीज ढंक जाते हैं। कहीं हलका पाटा भी फिरा देते हैं, जिससे भी बीज ढंक जाते हैं।

२. **नाई एक या दो चांसवाली**—यह भी हल जैसा हलका यंत्र होता है जिसमें एक नल लगा दिया जाता है जैसाकि चित्र में दिखाया गया है। इस नल का मुंह हलमूल के मुंह पर या उसके बगल में लगा देते हैं। ऊपर के

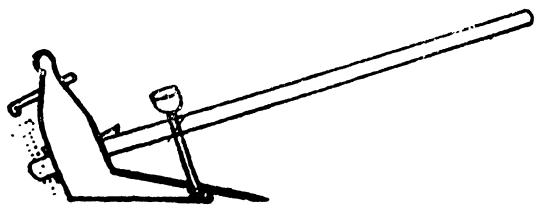

मुंह पर एक पीप-सी लगी रहती है, जिसमें बीज गिराते हैं। बीज भूमि में गिरकर ढंक भी जाते हैं। कहीं-कहीं दो नाईयों को एक साथ जोड़ देते हैं ताकि दो चांस एक साथ बोये जा सकें।

नाई की डंडी लगभग आठ फुट लंबी होती है। जहां दो नाईयां एक साथ जोड़ दी जाती हैं वहां एक की कुछ छोटी और दूसरी की लगभग नौ-दस फुट होती है। दोनों नाईयों को उनके धड़ के बीच में लकड़ी के दो टुकड़ों से जोड़ा जाता है। आवश्यकतानुसार दोनों के बीच की दूरी कम-ज्यादा की जा सकती है। साधारणतः यह दूरी १४" की रहती है।

नाई का धड़ ३' × ३½" चौड़ा और ३" मोटा नीचे की ओर होता है। ऊपर पतला बनाया जाता है।

मूल १¾' × ३" × २" धड़ की तरफ मोटा और दूसरी ओर नोकीला होता है। नोक की तरफ लगभग ६" लंबा फार लगा रहता है।

रबी की नाई अकेली होती है जोड़या नहीं होती। वह हल जैसी लेकिन हल से हलकी होती है।

३. **अरगड़ा**—खरीफ की फसल बोने के लिए कहीं-कहीं अरगड़ा नाम का यंत्र भी काम में आता है। इस यंत्र में बखर के धड़ जैसे धड़ में तीन फार लगे रहते हैं। तीनों फारों के साथ एक-एक रस्सी बंधी रहती है, जिसकी लंबाई दो-तीन हाथ की होती है। इस रस्सी के दूसरे छोर से नल का नीचे का मुंह बंधा रहता है और बांस के ऊपर का मुंह पीप के आकार का बना रहता है, जिसमें बीज गिराया जाता है। बोनेवाले स्त्रियों के हाथ ऐसे सधे रहते हैं कि बांस का नल सीधा रस्सी द्वारा ही घसीटता हुआ खेत में चला जाता है और बीज बो दिये जाते हैं। इस यंत्र में यह लाभ है कि अलग-अलग जाति के बीज अलग-अलग कतारों में बोये जा सकते हैं।

४. **तिफन**—तिफन हलके और भारी दो प्रकार के होते हैं। हलके

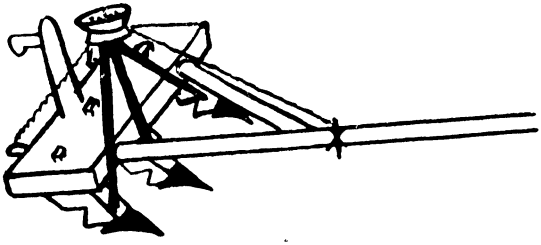

खरीफ की फसलों के लिए और भारी रबी की फसलों के लिए काम में आते हैं। इससे तीन-तीन कतारें एक साथ बोई जा सकती हैं। बीज पीप में गिरकर तीनों नलों में बराबर बंट जाते हैं। तिफन के धड़ से मिट्टी हिलकर बीज को ढंक देती है।

५. **ड्रिल**—ड्रिल, जैसा कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है, एक ऐसा यंत्र होता है कि उससे एक साथ कई कतारें बोई जा सकती हैं और

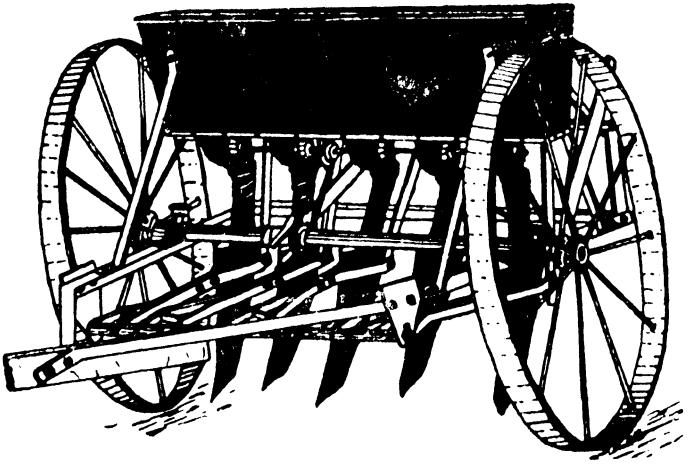

बीज बराबर की दूरी पर गिरते हैं। ड्रिल में जो बक्स रहता है, उसमें धुरी पर लोहे के गोल टुकड़े लगे रहते हैं। उनमें छोटे-छोटे चमच होते हैं, जिनके द्वारा बीज गिरते रहते हैं।

ड्रिल इतनी छोटी भी होती हैं कि एक जोड़ी बैल से चल सके और इतनी बड़ी और चौड़ी भी होती है कि ट्रेक्टर से चलाई जा सके।

विभिन्न फसलों के बीज की दर बोने की दूरी इत्यादि का वर्णन लेखक की विभिन्न फसलों, सागभाजी तथा फलों की खेती के वर्णन में देखना चाहिए। यहांपर स्थानाभाव के कारण सबका वर्णन असंभव है। कितनी-कितनी दूरी पर पौधे लगाने से कितने पौधे या पेड़ प्रति एकड़ होंगे इसकी गणना का सूत्र नीचे दिया जाता है।

सूत्र—

$$\frac{४३५६०}{\text{पंक्तियों का अंतर फुट में} \times \text{पौधों का अंतर फुट में}} = \text{संख्या पौधे प्रति एकड़}$$

उदाहरण—यदि हमारी पंक्तियां २ फुट की दूरी पर हैं और पौधे भी २ फुट की दूरी पर हैं तो संख्या पौधे प्रति एकड़

$$\frac{४३५६०}{२ \times २} = १०८९० \text{ पौधे हुए।}$$

७—निंदाई व निराई

निंदाई या निराई उस क्रिया को कहते हैं जिसमें खेतों की खड़ी फसलों के बीच का घास-पात निकाला जाय, मिट्टी की पपड़ी तोड़ी जाय, घने तथा व्याधिग्रस्त पौधों को निकाल दिया जाय और पौधों पर मिट्टी चढ़ाई जाय। खड़ी फसलों के बीच के घास-पात का निकालना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे पौधे खेत में से खुराक ही नहीं लेते बल्कि पानी भी चट कर जाते हैं जिससे मुख्य फसल की बाढ़ अच्छी नहीं होती। कई खेतों में तो ऐसे घास-पात की बाढ़ इतनी हो जाती है कि यदि उन्हें न निकाला जाय तो मुख्य

फ़सल की चौथाई उपज भी नहीं होती। ऐसे घासपात की बाढ़ से मुख्य फ़सल में व्याधियां लग जाती हैं और कीट भी बहुत हानि पहुंचाते हैं।

खेतों की पपड़ी तोड़ने से जड़ों को हवा लगती रहती है और कुछ अंश तक पानी का बचाव भी होता है।

निंदाई के यंत्र

निंदाई का सबसे प्रमुख यंत्र खुर्पी है। भारत के सभी भागों में निंदाई ऐसे यंत्रों से की जाती है। इनकी बनावट और नाम में अंतर पाया जाता है।

कहीं-कहीं लकड़ी के गोल दस्ते में लोहे का एक हाथ लंबा छड़ लगा रहता है, जिसका मुंह चपटा और पतला होता है, जिससे घासपात के पौधे उखाड़े जाते हैं। कहीं ऐसा यंत्र खुर्पे के आकार का होता है, तो कहीं, छोटी कोदाली के आकार का भी होता है और कहीं लकड़ी का दस्ता टेढ़ा होता है जिसमें लोहे के मुंह पर से दो-ढाई इंच मुड़ा हुआ छड़ रहता है। यह मुड़ा हुआ भाग पीटकर चपटा और पैना किया हुआ रहता है। ऐसे यंत्र जिन फसलों के पौधे घने होते हैं उनमें से अथवा जब पौधे बहुत छोटे होते हैं तो उनमें से घासपात निकालने के काम आते हैं। जहां पौधों की कतारें दूर-दूर होती हैं और पौधे बड़े होते हैं तो उनमें से घासपात निकालने के लिए बड़े यंत्र काम में आते हैं, जो मनुष्यों से अथवा बैलों या ट्रेक्टरों से चलाये जाते हैं। मनुष्यों से चलाये जानेवालों में हाथवाले 'हो' अच्छे होते हैं।

बैलों से चलाये जानेवाले यंत्र बखर के आकार के, लेकिन छोटे होते हैं। उन्हें डोरे, डूडियां, कड़पा, हो इत्यादि कहते हैं। जहां बखर का धड़ ढाई फुट से चार फुट लंबा होता है वहां कड़पे का धड़ एक फुट से लेकर पौने दो फुट होता है। बखर में लोहे की पास जहां बीस-बाईस इंच लंबी होती है, कड़पे की पास लगभग नौ-दस इंच लंबी होती है। दूसरे अंग भी बखर के अंगों के समान, लेकिन हल्के होते हैं। डंडियां पतली लेकिन लंबी उतनी ही होती है, क्योंकि इनकी लंबाई बैलों की ऊंचाई पर निर्भर है।

चूंकि दो कड़पे एक साथ चलाये जाते हैं। इनका जूआ लगभग सात फुट लंबा होता है, जहां बखर का साढ़े पांच से छः फुट लंबा होता है। कहीं-कहीं कड़पों में पास न लगाकर लोहे के दांते लगाये जाते हैं। प्रत्येक में तीन दांते रहते हैं। इन दांतों का लोहा आध इंच से पौन इंच चौकोर होता है, जिसका नीचे का मुंह टेढ़ा करके उसे चपटा और पैना कर देते हैं।

पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का काम 'हो' से अच्छा होता है, क्योंकि 'हो' के साथ ऐसे भाग आते हैं जिनसे मिट्टी चढ़ जाती है।

जहां ट्रेक्टरों से खेती होती है वहां उनसे चलाये जानेवाले लोहे के फारवाले यंत्र होते हैं।

८—सिंचाई

पौधों के लिए पानी की कितनी आवश्यकता है, यह कृषकों को भली-भांति विदित है। पौधे अपनी खुराक घोल के रूप में प्राप्त करते हैं और जब मिट्टी में पानी कम हो जाता है तो फसलें सूखने लगती हैं। जहां वर्षा तीस-चालीस इंच से ऊपर होती है, वहां बहुत-सी फसलें, विशेषतः अन्नों की, बिना सिंचाई के हो जाती हैं, परंतु जहां वर्षा तीस इंच से कम होती है वहां की कई फसलों को सींचना पड़ता है। सागभाजियों के लिए तो सिंचाई और भी आवश्यक हो जाती है।

जल-प्राप्ति के साधन

(१) वृष्टि से

(२) नदी, नाले, प्राकृतिक झरने या तालाब से।

(३) कुओं से।

(४) शहरों की मोरियों से।

सफल कृषक वही कहा जा सकता है जो अधिक-से-अधिक उपयोग उपर्युक्त जलों का कर सके, उन्हें खराब न होने दे।

(१) वर्षा का जल जब खेतों में गिरता है तो उसका संचय अच्छी तरह से हो सके इसके लिए खेत जोतकर रखना चाहिए, नहीं तो बहुत-से जल

का अपधाव हो जाता है अर्थात् वह बह जाता है। जुते हुए खेतों में वह रिसकर भूमि में जमा हो जाता है। वर्षा के जल का वाष्पन भी होता है और कुछका पौधों के पत्तों द्वारा उत्स्वेदन भी होता है। जमीन की पपड़ी तोड़ते रहने से वाष्पन कुछ कम हो जाता है। उत्स्वेदन तो जितना अधिक हो पौधों को लाभ ही पहुंचाता है।

(२) नदी, नाले, प्राकृतिक झरने और तालाब से जल नहरों द्वारा कम खर्चे से प्राप्त हो सकता है। चूंकि ऐसा जल सरलता से कम खर्चे में प्राप्त हो जाता है, कृषक खेतों को आवश्यकता से अधिक भर देते हैं, जिससे जल तो बिगड़ता ही है भूमि भी बिगड़ती है। धीरे-धीरे वह ऊसर होने लगती है। इसलिए आवश्यकता से अधिक जल नहीं देना चाहिए।

(३) **कुओं से**—जो जल भूमि में रिसता है, वह कुओं में जाता है। कुआं में जमीन के अंदर कुछ झरने बहते रहते हैं। उनसे भी पानी आता रहता है।

(४) **शहर की मोरियों से**—ऐसे पानी को गंदा पानी कहते हैं। बड़े-बड़े शहरों में खुली अथवा बंद मोरियों द्वारा पानी बहाकर एक ओर ले जाते हैं। सागभाजी अथवा चरी इत्यादि उत्पन्न करनेवाले ऐसे पानी को सिंचाई के काम में लाते हैं। बहुत बड़े शहरों में पैखाने साफ करने के लिए फ्लश-प्रणाली काम में लाई जाती है। मलमूत्र और जल का घोल एक विशेष स्थान पर ले जाकर वहां कृत्रिम क्रिया और सूक्ष्म जंतुओं की सहायता से उसका विच्छेदन कराया जाता है। जो गाद बच जाता है उसे 'स्लज' कहते हैं और वह खाद का काम देता है। जो पानी रह जाता है वह खेतों की सिंचाई के काम आता है।

जल उठाने के साधन

जहां नहरें अथवा तालाब खेतों से ऊंची सतह पर होते हैं वहां से जल नहरों और नालियों द्वारा खेतों तक पहुंचा दिया जाता है। परंतु जहां पानी की सतह नीची होती है वहां से पानी ऊपर उठाना पड़ता है। पानी उठाने के लिए कई प्रकार के यंत्र हैं, जो पानी के सतह की गहराई, पानी की

आवश्यकता, कृषकों की आर्थिक स्थिति-अनुसार चुने जा सकते हैं। ऐसे यंत्र दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो मनुष्यशक्ति से चलाये जा सकें और दूसरे वे जिनमें पशु, हवा, भाप, तेल या बिजली की शक्ति काम में लानी होती है।

मनुष्यों द्वारा चलाये जानेवाले यंत्र

टोकरी, डोन, ढेंकुली, चेन पंप, सक्शन या फोर्स पंप, किफायत रहट इत्यादि।

१. **टोकरी**—इससे सात-आठ फीट तक की गहराई का पानी उठाया जा सकता है। इससे लगभग पांच-छः मन पानी प्रति मिनिट उठाया जा सकता है। यह एक सूपाकार टोकरी होती है, जिसके चारों कोनों पर चार रस्सियां बंधी रहती हैं। दो व्यक्ति जल के गड्ढे के दोनों छोरों पर खड़े रहकर रस्सियां हाथ में पकड़े रहते हैं और टोकरी को बार-बार पानी में डालकर ऊपर फेंकते रहते हैं, जिससे पानी जमीन की सतह पर गिरकर नालियों द्वारा खेतों में पहुंच जाता है।

२. **डोन**—जहां पानी पांच-छः फुट गहरा हो वहां इसका उपयोग अच्छा होता है। एक ही व्यक्ति इससे प्रति घंटा लगभग सौ मन पानी उठा सकता है। यह एक नौका जैसा बर्तन होता है, जिसका एक छोर खुला रहता है और दूसरा बंद। खुला मुह जमीन की सतह पर दो खूंटियों के साथ बंधा रहता है और इसी मुंह से पानी डोन से बाहर निकलता रहता है। दूसरे छोर पर एक रस्सी बंधी रहती है, जिसका एक छोर बांस से बंधा रहता है। इस बांस का बीच का भाग एक मोटी गड़ी हुई लकड़ी पर मोटी कील द्वारा लगा दिया जाता है और उसपर यह घूमता रहता है। बांस के दूसरे छोर पर वज़न बांध देते हैं, जिससे भरी हुई डोन उठाने में सरलता रहती है। एक व्यक्ति पानी की सतह के निकट तख्तों पर खड़ा रहता है और डोन को पानी में अपने पांव से डुबो देता है। जब भर जाती है तो उसे छोड़ देता है बांस में दूसरे छोर में वज़न से डोन का बंदवाला मुंह ऊपर उठ जाता है और डोन खाली हो जाती है।

३. **ढेंकुली**—थोड़े क्षेत्रफल के लिए ढेंकुली भी अच्छी होती है। इससे दस-पंद्रह फुट की गहराई तक का पानी उठाया जा सकता है और एक घंटे में लगभग पचास-साठ मन पानी फेंका जा सकता है। यह एक डोल जैसा बर्तन होता है, जिसको पेंदी चपटी न होकर गोल और नोकीली होती है ताकि बाहर निकलने पर थाले पर रखते ही वह आप-से-आप उलट जाय और पानी फेंक दे। इसका सिद्धांत भी डोन जैसा ही है। ढेंकुली का एक मुंह रस्सी द्वारा बांस के एक छोर से बंधा रहता है। बांस एक खंभे पर घूमता रहता है और दूसरे छोर पर बंधे हुए वजन से ढेंकुली सरलता से ऊपर आ जाती है।

४. **चेन पंप**—इससे आठ-दस फुट की गहराई का पानी लगभग डेढ़सा मन प्रति घंटा दो व्यक्तियों द्वारा उठाया जा सकता है। इसमें करीब तीन इंच व्यास का लोहे का नल रहता है। इस नल का एक मुंह पानी में डूबा रहता है और दूसरा एक लकड़ी के चौखटे में लगा रहता है, जहां पानी निकलता है। नल में एक लोहे की चेन डालते हैं, जिसमें दोनों मुंह जोड़ दिये जाते हैं। लकड़ी के चौखटे पर एक चक्का लगाया जाता है, जो धुरी पर घूमता है और चेन चक्के पर चलती रहती है। चेन में थोड़ी-थोड़ी दूर पर लकड़ी के गुटके, जिनपर चमड़े के वाशर लगे रहते हैं, लगा दिये जाते हैं ताकि उनके द्वारा पानी ऊपर उठता हुआ चला आवे।

५. **सक्शन या फोर्स पंप**—इनसे पचीस-तीस फुट का पानी ऊपर उठाया जा सकता है। पंप के दस्ते को एक व्यक्ति हिलाया करता है, जिससे पानी ऊपर आ जाता है। ऐसे पंप कई प्रकार के होते हैं, इसलिए पंप-विक्रेता से यह जानकारी प्राप्त हो सकती है कि इससे कितने समय में कितना पानी ऊपर फेंका जा सकेगा।

६. **किफायत रहट**[1]—यह यंत्र भी छोटे बागीचों के लिए काम का है। इससे लगभग चालीस फुट तक की गहराई का पानी उठाया जा सकता है

[1] किर्लोस्कर बंधु सतारा द्वारा बनाया गया यंत्र।

और एक घंटे में लगभग एक सौ मन पानी ऊपर आ जाता है। एक व्यक्ति दस्ते द्वारा इसे चला सकता है। छोटी बालटियों द्वारा पानी ऊपर आता रहता है। प्रत्येक बाल्टी में लगभग सवा सेर पानी आता है और इसमें करीब सौ बालटियां लगी रहती हैं। ये एक चेन पर लगी रहती है और चेन पहिए पर घूमती रहती है। भरी बालटियां ऊपर आते ही चौखटे में पानी गिरा देती है और खाली बालटियां उल्टे मुंह पानी में चली जाती हैं।

पशु-शक्ति से चलाये जानेवाले यंत्र

इनमें १. चेन पंप, २. सक्शन या फोर्स पंप, ३. रहट, ४. मोट या चड़स की गणना है। इनमें से पहले तीन वैसे ही होते हैं, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है। ये बड़े होते हैं, इनसे पानी अधिक उठाया जा सकता है और गीयर नाम के यंत्र से चलाये जाते हैं। बैल-जोड़ी इस यंत्र के चारों ओर गोल चक्कर में घूमती है। इसके दांतोंवाले चकों के द्वारा शक्ति-संचालन होता है।

मोट या चड़स--मोट बहुधा चमड़े के होते हैं परंतु वर्तमान समय में चमार लोग इनकी मरम्मत में काफी तकलीफ देने लगे तो लोहे के चड़स बनाने पड़े।

चमड़े के मोट दो प्रकार के होते हैं—एक बिना सूंड के और दूसरे सूंड-वाले। बिना सूंडवाले को थाले पर खाली करने के लिए एक व्यक्ति अधिक लगता है। सूंडवाले अपने-आप थाले पर पानी फेंक देते हैं। साधारण मोट में लगभग चार मन पानी आता है। मोट बड़े भी होते हैं, जिनमें दो जोड़ी बैल भी कहीं-कहीं लगाये जाते हैं। मोट से कितना पानी मिल सकेगा यह मोट के आकार, बैलों की चाल तथा जल की गहराई से जाना जा सकता है। साधारण मोट से यदि पच्चीस-तीस फुट से पानी उठाना हो तो एक दिन में आधे से पौन एकड़ की सिंचाई हो सकती है। गर्मी के दिनों में आधा एकड़ सींचना भी कठिन हो जाता है।

मोट के साथ अन्य आवश्यकीय वस्तुएं

(१) **नाड़ी**—यह एक इंच से डेढ़ इंच मोटी रस्सी होती है, जिससे मोट बांधा जाता है। मोट चकरी पर से ऊपर-नीचे इसी नाड़ी द्वारा आती-जाती है।

(२) **संडोर**—यह आधे से पौन इंच मोटी एक रस्सी होती है जो सूंड के मुंह पर लगाई जाती है। यह रस्सी "ताकरिये" पर चलती है।

नाड़ी व संडोर की लंबाई कुए के जल की गहराई पर निर्भर है।

(३) **थाला**—पक्का या लकड़ी का बना हुआ होता है, जिसमें दो 'पावठे' रहते हैं। इन पावठों में दो 'सूरिये' (लकड़ी के खंभे) लगाये जाते हैं। इनकी लबाई लगभग छः-साढ़े छः फुट बैलों की ऊंचाई अनुसार होती है। इस सूरिये के नीचे के मुंह पावठों में और ऊपर के एक 'पाटली' (आठ-दस इंच व्यास का लकड़ी का टुकड़ा करीब चार फुट लंबा होता है) में बिठाये हुए होते हैं। पाटली के बीच में दो लकड़ी के टुकड़े करीब डेढ़ फुट लंबे लगे रहते है, जिनपर चकरी (भमरा) फिरती है।

(४) **चकरी**—यह बहुधा लकड़ी की बनी हुई होती है। इसका व्यास एक फुट, मोटाई अढ़ाई इंच तथा गहराई, जिसमें नाड़ी बैठती है, डेढ़ इंच होती है। चकरी के बीचों-बीच एक लोहे की कील लगी रहती है, जो लगभग दस इंच होती है। ये कीलें टोड़ले पर घूमती है।

(५) **ताकरिया**—यह दो फुट चार इंच लंबा, पांच इंच व्यास का लकड़ी का बेलन होता है, जिसके दोनों छोरों पर लोहे की कीलें लगी रहती है। ये कीलें लगभग चार-चार इंच बाहर रहती हैं और थाले पर खांचे-वाले लकड़ी के टुकड़ों पर घूमती है। संडोर इन्हींपर चलती है।

(६) माची चड़स का मुह लोहे के कुडल या लकड़ी के चौखटे से पतली रस्सी द्वारा बांधा जाता है। चौखटा वर्गाकार होता है। वर्ग का मुंह लगभग एक फुट दो इंच की भुजा का होता है।

(७) चड़स का जुआ पांच फुट लंबा होता है। चमड़े के मोट में समय-समय पर तेल लगाना पड़ता है। जब बरसात में मोट रखी जाय तो

उसे धोकर तेल देकर रखना चाहिए। नये मोट में लगभग चार सेर और पुराने में लगभग दो-ढाई सेर तेल लगाना होगा। उसी भांति जब मोट फिर से काम में लाये जायं तो भी तेल लगाना चाहिए।

हवा—हवा से पानी उठाने के यंत्रों को 'एरोमोटर' कहते हैं। इसमें एक पंखा जमीन की सतह से पंद्रह-बीस फुट ऊंचा लोहे के ढांचे में लगा रहता है और हवा के जोर से चलता है। इस पंखे का एक धड़ पंप से लगा रहता है, जिसके द्वारा पानी ऊपर उठता रहता है।

भाप—कई जगह वायलर द्वारा भाप उत्पन्न करके उससे पंप चलाये जाते हैं। वर्तमान समय में सिंचाई के लिए भाप की शक्ति की अपेक्षा तेल और बिजली की शक्ति का विशेष उपयोग होने लगा है।

तेल—कई स्थानों पर आइल एञ्जिन मिट्टी के तेल या 'क्रूड आइल' से चलाये जाते हैं और इनकी शक्ति से पंप द्वारा पानी ऊपर उठाया जाता है।

बिजली—जहां बिजली की शक्ति प्राप्त हो वहां यह शक्ति बड़ी सस्ती पड़ती है। बटन दबाते ही पानी ऊपर आने लगता है और बंद कर देने से तुरंत बंद हो जाता है। एंजिन चाहे भाप का हो या तेल का, उन्हें चलाने के लिए एक नौकर रखना पड़ता है। बिजली की शक्ति में यह झंझट नहीं रहती। थोड़े-से ज्ञानवाला व्यक्ति चला सकता है और प्रारंभिक खर्च भी कम लगता है। जहां १० अ. व. वाली मोटर से काम चल जाता है वहां १५ अ. ब. वाला एंजिन लगाना होता है।

पंप खरीदने के लिए पंप-विक्रेताओं को निम्नलिखित ब्योरे की सूचना देनी चाहिए।

(१) कुएं की लंबाई और चौड़ाई और यदि गोल हो तो उसका व्यास।
(२) गर्मी में पानी कितना गहरा चला जाता है।
(३) बरसात में पानी जमीन की सतह से कितना नीचे रहता है।
(४) कुएं से पानी कितना ऊपर फेंकना होगा।
(५) पंप में मोड़ कितने होंगे।

(६) यदि एंजिन हो और पंप मंगाना हो तो एंजिन के शक्ति-संचालक पहिए का व्यास और प्रति मिनिट कितने चक्कर लगाता है, इसका ब्योरा देना चाहिए। यदि पंप ऐसे पहिए से चलनेवाला न मिले तो शक्ति-संचालक पहिए का व्यास घटाना-बढ़ाना होगा।

(७) प्रति मिनिट पानी कितना चाहिए।

(८) कुएं में सिंचाई के मौसम में पानी कितना रहता है।

पंप चुनने में जल-भंडार और उससे सींचे जानेवाले क्षेत्रफल का विचार करना होता है। यदि जल कम हुआ और पंप बड़ा लगा दिया तो पंप बहुत समय तक खाली पड़ा रहेगा। यदि पानी पूरा हो और भूमि कम हो तो भी बड़ा पंप लगाना व्यर्थ होगा।

पानी को माप कैसे की जाय ?

एक एकड़ पर यदि एक इंच पानी दिया जाय तो वह एक सौ टन होता है। मान लो हमें ऐसा पंप चाहिए जो दो एकड़ पर दो इंच पानी नित्य दे सके, तो कुल ४०० टन पानी हुआ। पानी का नाप बहुधा गैलन में होता है। (एक गैलन = १० पौ० या ५ सेर) इस हिसाब से ४०० टन

$= \frac{२२४० \text{ पौ०} \times ४०० \text{ टन}}{१० \text{ पौ०}} = \frac{८९६०००}{१०} = ८९६००$ गैलन। साधारणतः पंप दिन में आठ या दस घंटा चलाया जाता है। मान लो ९ घंटा चलाया तो एक घंटे में ११२०० गैलन और एक मिनिट में $\frac{११२००}{६०} =$ १८६·६६ गैलन प्रति मिनिट हुआ। यानी हमें ऐसा पंप चाहिए जो लगभग १८७ गैलन पानी प्रति मिनिट फेंक सके।

कुछ आवश्यक बातें

(१) पंप लगाते समय वह इतना गहरा होना चाहिए कि पानी घटने पर उसका मुंह पानी के बाहर न निकल आवे। लगभग १५ फुट पानी में रहना चाहिए।

(२) कितना पानी फेंकने के लिए नल का व्यास[1] कितना होना चाहिए ?

पानी प्रति मिनिट गैलन	नल का व्यास
३-४	०.७५ "
४-७	१.०० "
८-१४	१.२५ "
१४-२२	१.५० "
२३-३८	२.०० "
३९-६५	२.५० "
६६-११०	३.०० "
११०-१७७	३.५० "
१७७-२३०	४.०० "
२३० से ४२०	५.०० "
४२० से ७२०	६.०० "
७२० से १०००	७.०० "

(३) पंप और एंजिन के बीच की दूरी १० फुट अवश्य होनी चाहिए।

(४) कैसे पंप के लिए कितनी शक्ति (हार्स पावर) वाला एंजिन चाहिए उसकी गणना का सूत्र यह है—

$$\frac{\text{गैलन जल प्रति मिनिट} \times १० \text{ पौ.}^{२} \times \text{ऊंचाई फुटों में}}{३३००} \times \frac{१००}{\text{कार्य-क्षमता}}$$

ऊंचाई—पानी की सतह से ऊपर के मुह तक। इसमें दो बातों का विचार रखना चाहिए—एक तो यह कि जो पानी ऊपर चढ़ता है तो उसपर पानी का दबाव पड़ता है और दूसरा पंप के साथ, जो पानी ऊपर चढ़ता है तो उसके साथ रगड़ खाने में कुछ शक्ति घटती है।

1. Brown H. B. and Hutchinson S. S. Vegetable Science 1949 p. 130

2. १ गै० = १० पौ०

कार्य-क्षमता—एंजिन द्वारा जितनी शक्ति उत्पन्न हो सकती है, वह सब उपयोगी नहीं होती। सिर्फ ४०-५० शतांश तक काम में आती है। शेष एंजिन के चलने की रुकावटों को पार करने में नष्ट हो जाती है।

उदाहरण—मान लो हमें दो इंच के व्यास के पंप द्वारा प्रति मिनिट ६० गैलन पानी ऊपर फैंकना है और ऊंचाई ५० फुट है।

$$\text{अश्वशक्ति एंजिन} = \frac{६० \times १० \times ५०}{३३००} \times \frac{१००}{४०} = २.५$$

अर्थात् हमें २.५ हार्स पावर का एंजिन चाहिए।

आजकल खेती के काम में डीजल तेल का प्रयोग होता है। ऐसे तेल से चलनेवाले एंजिन तीन अश्वशक्ति से कम के नहीं मिलते। साधारणतः पांच-छः अश्वशक्ति के मिल जाते हैं। ऐसे एंजिन खरीदे जायं तो उनसे दूसरा भी काम लेना चाहिए।

खेती के लिए पंपों में 'सेंट्रीफ्युगल' पंप अच्छे होते हैं। ऐसे पंपों में पंखे द्वारा रिक्त स्थान कर दिया जाता है, जिससे पानी कुएं में से ऊपर चढ़ता है। इन पंखों की चाल २००० से ३००० चक्कर प्रति मिनिट होनी चाहिए। इनके द्वारा २० फुट तक की गहराई का पानी बाहरी हवा के दबाव के कारण ऊपर उठता है। इससे अधिक गहराई का पानी नहीं उठता। यही कारण है कि जहां कहीं 'सेंट्रीफ्युगल' पंप लगाये जाते हैं, कुओं के अंदर पानी की सतह से कुछ ऊपर लगाते हैं, ताकि पंप से पानी की सतह २० फुट से अधिक न हो। सर्दी और गर्मी के दिनों में पानी की सतह में २० फुट से अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में सर्दी के दिनों में जो पंप पानी की सतह पर काम करता है, उसी स्थान से गर्मी में भी पानी उठा सकेगा। जहां पंप के स्थान से ऊपर उठाने का प्रश्न है, वहां वह एक सौ फुट तक चढ़ाया जा सकता है, इसलिए जो कुएं बहुत गहरे होते हैं, उनमें बिजली की मोटर लगाते हैं, क्योंकि तेल के एंजिन कुएं के अंदर नहीं लगा सकते। उन्हें हमेशा जमीन की सतह पर ही लगाना चाहिए।

जहां पानी बहुत गहराई से उठाना होता है, उसके लिए 'टर्बाइन' पंप

काम में आते हैं। ये बड़े लंबे लोहे के छड़ (Shaft) से चलाये जाते हैं और ये छड़ जमीन पर लगे हुए एंजिन या बिजली की मोटर से चलते हैं।

पंप के अंग—जो मुह जल के अंदर रहता है, उसपर एक जाली रहती है ताकि कोई मोटी वस्तु पानी के साथ खिंचकर पानी में न घुस जाय और पंप बंद कर दे। इसके बाद एक पाद-कपाट (Foot valve) होता है, जो पानी को अंदर तो आने देता है; लेकिन उसे फिर से कुएं में नहीं जाने देता। मिट्टी के तेल के पीपे में से तेल निकालने के लिए घरों में जो यंत्र होता है, उसमें भी पाद-कपाट होते हैं। उन्हें देखने से यह ज्ञात हो जायगा कि यह पाद-कपाट कैसा होता है।

नल—जिस नल द्वारा पानी ऊपर उठाया जाता है, वह ऐसा होना चाहिए कि उसमें कहीं से हवा न जाय। नहीं तो पानी ऊपर नहीं उठेगा।

पंखे घुमानेवाला पहिया—यह पहिया एंजिन के शक्ति-संचालक पहिये से घुमाया जाता है। इसलिए इन दोनों के व्यास में एक अनुपात होता है, ताकि पहिये विशिष्ट गति से चलें। पंप का पहिया बहुधा स्थायी होता है। एंजिन का पहिया ही बदला जा सकता है, जिसकी गणना निम्नलिखित से सूत्र से की जा सकती है।

$$\frac{\text{पंप के पंखों की गति} \times \text{पंप के पहियों का व्यास इंच में}}{\text{एंजिन के पहिये के फेरे}} = \text{एंजिन के पहिये का व्यास}$$

एंजिन के पहिये से पंप के पहिये में शक्ति का संचालन पट्टे द्वारा होता है। यदि पंप और एंजिन ऐसी दशा में स्थापित हो कि पंप के घूमने की दशा उलटी पड़े तो पट्टे में मोड़ डाल देते हैं।

पंप से नीचे पानी उठाने का जो नल रहता है, उसका व्यास ऊपर जो पानी फेंकता है उस नल से अधिक रहता है।

नलों में जितने मोड़ कम होंगे, उतना ही पानी अधिक फेंका जायगा।

सिंचाई की रीति—विदेशों में कहीं-कहीं ऐसे पंप लगा दिये जाते हैं, जो फव्वारे की भांति फसलों पर जल फेंकते हैं। ऐसा करने में एक तो पौधे

धुल जाते हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है और उनके पत्तों में होने-वाली रासायनिक क्रियाएं अच्छी होती हैं। दूसरे वातावरण भी कुछ ठंडा हो जाता है।

दूसरी रीति में पानी की नालियां भर दी जाती हैं और तीसरी में क्यारियां बनाकर भरते हैं। जहां नहर से पानी देना होता है, वहां खेतों में लंबी-लंबी क्यारियां बनाकर छोड़ देते हैं। उपर्युक्त रीतियां फसलों की जाति-अनुसार काम में लाई जाती हैं अथवा जमीन ढालू हुई तो वहां क्यारियों की अपेक्षा नालियां ही बनानी पड़ती हैं। ये ढाल के समानांतर रहती हैं। फलों के वृक्षों के लिए गमले बनाये जाते हैं या पेड़ के पास की कुछ भूमि छोड़कर चक्कर बनाते हैं। जहां दीमक का भय हो वहां गमले ही अच्छे रहते हैं, क्योंकि चक्कर बनाने से ज्योंही पानी दिया जाता है, दीमक छेद की ओर भागती है और उन्हें हानि पहुंचाती है।

जल की मात्रा—पानी कब और कितना देना चाहिए यह वर्षा, भूमि की जाति, वातावरण की तरी तथा फसल की मौसम और आयु पर निर्भर है। जहां वर्षा इतनी होती है कि उसीके आधार पर फसल तैयार हो जाय तो सींचना पड़ता ही नहीं। भारतवर्ष में कुछ स्थान ऐसे हैं कि गन्ने जैसी बारह महीने की आयुवाली फसल भी बिना सिंचाई के हो जाती है। इसके विपरीत कई स्थान ऐसे हैं कि बिना सिंचाई के कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जल देना होगा। वैसे फसलें अपनी मांग दर्शा देती है। जमीन फट जाय और फसलें मुर्झाने लगें तो पानी तुरंत देना चाहिए।

९—फसल की तैयारी

कौन-सी फसल किस समय उपयोग के योग्य अथवा काटने के योग्य हो जाती है, इसका बहुत ध्यान रखना पड़ता है। इसके लिए हम फसलों को चार भागों में बांट सकते हैं (१) साधारण फसलें, जिनसे बीज प्राप्त

होते हैं—गेहूं, ज्वार, मटर, चना इत्यादि (२) विशेष फसलें जैसे गन्ना, कपास, तंबाकू, सन इत्यादि (३) साग-भाजी और (४) फल।

१. **साधारण फसलें**—इनमें धान्य, दलहन तथा तिलहन की फसलें गिनी जा सकती हैं। धान्य की अधिकांश फसलें जब दाना बिल्कुल पक जाता है तब काटी जाती हैं। ऐसी फसलों का दाना झड़ न जाय, इसलिए इन्हें सुबह से दोपहर तक जब उनमें नमी रहे तब काटना अच्छा होता है। दोपहर के बाद काटने से दाना विशेष झड़ता है। दलहन की फसलों में उन्हें बिलकुल सूख जाने से कुछ पहले काटना अच्छा रहता है, वरना कुछ फलियां चिटक जाती हैं और बीज खेतों में बिखर जाते हैं। तिलहन की फसलों में भी बहुत-से फल फटकर दाना बिखेर देते हैं तो उन्हें भी पूर्ण सूखने के पहले ही काटना होता है। तिल की डोड़िया आधी पीली पड़ जायं और दो-एक फटने लगें, उसी मय काट लेनी चाहिए।

गहाई—उपर्युक्त फसलें काटने के बाद भूसे से बीज छुड़ाने की क्रिया 'गहाई' होती है, जो फसल की उपज-अनुसार होती है। फसल जब थोड़ी होती है तो उसे डडों से पीट-पाटकर गहाई का काम कर लेते हैं। अधिक होने से बैलों से कुचलवाते हैं। जहां अच्छे यंत्र उपलब्ध होते हैं, वहां 'थ्रेशर' नाम का यंत्र गहाने के काम आता है। इसे एंजिन या ट्रेक्टर से चलाते हैं। इससे काम बहुत जल्दी होता है।

मक्का को छोड़कर धान्य की प्रायः सब फसलें गहाई जाती हैं। मक्का के बीज भुट्टों पर से हाथ से छुड़ाये जाते हैं या भुट्टों को लाठियों से पीटकर छुड़ाते हैं। दलहन की फसलों में भी तूर (रहर) को छोड़कर सब बैलों से गहाई जाती हैं। तिलहन की फसलों में एरंडी, खसखस, तिल, मूंगफली को छोड़कर शेष गहाई जाती हैं। एरंडी के बीज गुच्छे-के-गुच्छे तोड़कर अलग किये जाते हैं। खसखस के डोड़ों से अफीम निकालकर उन्हें पावों से कुचल कर पोस्त (बीज) अलग किये जाते हैं, तिल की पिंडियां उलटकर छोटे डंडे से पीटी जाती हैं, जिससे फटे हुए फलों से बीज गिर जाते हैं। मूंग-फली तो हाथ से ही पौधों पर से तोड़ी जाती है। 'झूमकी' यानी खड़े

पौधेवाली मूंगफली के पौधे हाथ से खींचने से उखड़ जाते हैं, जिनसे फलियां तोड़ ली जाती हैं। फैलनेवाली के लिए खेत में हल चलाकर पेड़ उखाड़ देते हैं और बाद में मजदूरों से फल तुड़वा लेते हैं।

उड़ावन—गहाने के बाद उड़ावन की क्रिया होती है। यह कार्य अधिकतर प्राकृतिक हवा की सहायता से ही होता है, लेकिन कभी-कभी इस प्रकार के उड़ावन में कई दिन तक तैयार माल खलों में पड़ा रह जाता है। यदि उस समय वर्षा हो जाय तो बड़ी हानि हो जाती है। ऐसे खतरे से बचने के लिए कुछ कृषकों को मिलकर 'विनोग्रर' नाम के यंत्र को खरीद लेना चाहिए। इससे काम बहुत जल्दी होता है। भूसे के सिवाय कंकर और

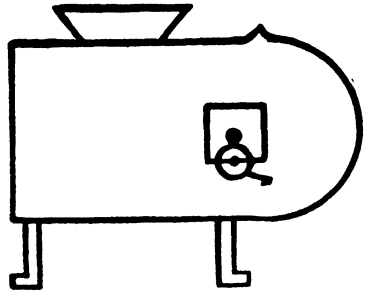

विनोग्रर

महीन कूड़ा व धूल भी अनाज से अलग हो जाती है। साफ अनाज मिल जाता है। गेहूं जैसा लगभग अस्सी मन अनाज एक दिन में तैयार हो जाता है।

यंत्र ऐसे भी होते हैं जिनके द्वारा गहाई और उड़ावन का कार्य एक साथ किया जा सकता है। ऐसे यंत्र ट्रेक्टर या एंजिन से चलाने होते हैं। गेहूं जैसी फसल के लिए तो ऐसा यंत्र भी है जिसमें गेहूं को खेतों में से काटने, गाहने और उड़ाने की तीनों क्रियाएं एक साथ चलती रहती हैं। ऐसी कलों को काम में लाने के लिए खेत हमवार होने चाहिए। ऊंचे-नीचे होने से काम ठीक नहीं होता। चूंकि ऐसे यंत्र भारी होते हैं, इन्हें ट्रेक्टर से चलाना पड़ता है।

२. **विशेष फसलें**—कपास मजदूरों द्वारा पौधों पर से चुनवाना पड़ता

है। तंबाकू के पत्ते मजदूरों से कटवाने पड़ते हैं और एक खास क्रिया द्वारा तैयार किये जाते हैं। कुछ माहिर व्यक्ति ऐसे काम को ग्राम-ग्राम जाकर अपना मेहनताना लेकर तैयार कर देते हैं। सन या पाट के पौधे पानी में गलाये जाते हैं और जब तागा छूटने जैसा हो जाता है तो मजदूरों से उसे छुड़वाते हैं। गन्ने के पत्तों को छीलकर उन्हें मिलों में भेज देते हैं, जहां उनसे शकर या चीनी बनाई जाती है। इनसे कृषक लोग गुड़ भी बनाते हैं। गुड़ बनाने में निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होती है—

(१) **चर्खी या कोल्हू**—गन्ना से रस निकालने के लिए। यह एक जोड़ी बैल से चलता है। दिन-रात चलाना पड़ता है। दो जोड़ी बैल रखे जाते हैं, सो बारी-बारी से जोते जाते हैं।

(२) **नांद**—यह एक लोहे का बर्तन होता है। चर्खी से निकलता हुआ रस इसमें जमा होता है। इसके मुँह का व्यास ढाई फुट और पैंदे का दो फुट काफी होगा। यह ढाई फुट गहरी होनी चाहिए।

(३) **नांद में रस निकालकर कड़ाह में डालने के लिए बर्तन**—बाल्टी या दो घड़े।

(४) **कड़ाह**—लोहे का एक ऐसा बर्तन होता है, जिसमें रस गरम करके गुड़ बनाते हैं। इसका ऊपर का व्यास साढ़े चार फुट, नीचे का चार फुट और गहराई एक फुट होनी चाहिए।

(५) **रस छानने के लिए कपड़ा और टोकरे**—कपड़ा रहे तो अच्छा है, नहीं तो बांस के टोकरों से काम चल जाता है।

(६) **उबलते हुए रस को चलाने के लिए लंबे दस्तेवाले खुर्पे**—ये लोहे के या लकड़ी और बांस के हो सकते हैं।

(७) **रस पर का मैल उतारने के लिए लोहे का झरना।**

(८) **दो चटुए।**

(९) **भट्टी मे लगाने के लिए लोहे का ग्रेट।**

(१०) **भट्टी में झोंकन को चलाने के लिए लोहे का छड़, जिसका एक मुंह मुड़ा हुआ हो।**

(११) भट्टी में से राख निकालने का शावेल।

(१२) गुड़ रखने के लिए मिट्टी के मटके, यदि वह गीला हो और यदि सूखा हो तो उसपर लपेटने के लिए चट्टियां। अधिकतर अलग-अलग तोल की भेलियां बनाकर खुली ही बाज़ार में बेच दी जाती हैं।

उपर्युक्त यंत्रों के अलावा उबलते हुए रस का मैल छूट कर ऊपर आ जाय, इसके लिए दूध, चूने का पानी या भिंडी की जड़, सेमल, देवला या सुखलाई की छाल को पानी में भिगोकर उस पानी से भी मैल छांटा जाता है।

३. **सागभाजी**—सागभाजी को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एक कंदवाली जो जमीन के अंदर होती हैं और दूसरी वे जो जमीन के ऊपर होती है। कंदवाली फसलें हाथ से उखाड़कर अथवा हाथ के यंत्र या हलों की सहायता से खोदकर निकाली जाती हैं। जमीन के ऊपरवाली फसलें उनके अंगों की उपयोगितानुसार जैसे-जैसे उपयोग के योग्य होती जाती है तोड़ ली जाती हैं। सागभाजी कई प्रकार की होती है। लेखक की 'सागभाजी की खेती' में ही सवा सौ से अधिक का वर्णन है, इसलिए कौन-कौन-सी सागभाजियां कब-कब तैयार होती हैं, इनका वर्णन 'सागभाजी की खेती' में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

४. **फल**—अधिकांश फलों के छोटे-बड़े पेड़ होते हैं। खरबूज़, तरबूज़ इत्यादि कुछ फल ऐसे होते हैं, जिनकी लताएं होती हैं। फल ज्यों-ज्यों तैयार होते जाते हैं, तोड़कर काम में लाये जाते हैं। ऊंची डालों के फल तोड़ने के लिए 'सींकी' काम में लाई जाती है, जो एक बांस तथा लोहे के कुंडल और कपड़े की थैली या सुतली की जालीदार बनी हुई होती है। थैली का मुंह कुंडल पर सिया हुआ होता है और कुंडल बांस को चीरकर उसमें फंसा दिया जाता है। फल जल्दी टूट जाय, इसलिए बांस और कुंडल के साथ बांस की छोटी चपटी चिपटी बांध दी जाती है, जिससे फल का डंठल कट जाता है और फल थैली में गिर जाता है।

जब थैली भर जाती है तो वे फल एक टोकरे में डाल दिये जाते हैं

और जब टोकरा भर जाता है तो उसे रस्सी के सहारे से नीचे उतार देते हैं।

कहीं-कहीं फल तोड़ने के लिए लकड़ी की सीढ़ी (निसएनी) भी काम में लाई जाती है। फल अधिकतर पके हुए तोड़े जाते हैं। कुछ अधपके भी तोड़े जाते हैं, जो दो-चार दिन में पूरे पक जाते हैं। आम जैसे फल जब पेड़ पर से दो-चार पके फल गिरने लगते हैं तब उतारकर 'पाल' में पकाये जाते हैं। घास और पत्तों में दबाकर पकाने की क्रिया को पाल कहते हैं। सेव-संतरे इत्यादि पकने पर ही तोड़े जाते हैं। केले की घड़े जब तैयार हो जाती हैं तो उन्हें एक विशेष क्रिया द्वारा धुआं और गरमी देकर पकाते हैं।

१०—वितरण और व्यवसाय

फसलों के तैयार होने के बाद उनके वितरण और व्यवसाय का प्रश्न आता है। धान्य, दलहन तथा तिलहन की फसलों के बीज का वितरण उनके बोने के बीज तथा अन्य उपयोगों के लिए होता है। भूसा पशुओं को खिलाने जैसा होता है, वह खिलाया जाता है और शेष का खाद बनाया जाता है। रहर जैसी फसल की डंडियां जलाने, टट्टे बनाने अथवा टोकरियां बनाने के काम आती हैं।

अच्छे संपन्न कृषक बोने के लिए चुन करके अच्छा बीज रखते हैं। जो कृषक अपना बीज नहीं रख सकते वे दूसरों से लेकर बोते हैं। कृषक बीज अपने रखें अथवा दूसरे उनके लिए रखें, बीज का कुछ भाग तो बोने के लिए रखना ही पड़ता है। फसल की जाति तथा उपज-अनुसार यह भाग उपज का एक शतांश या उससे कम से लेकर दस-बारह शतांश तक पड़ता है। कहीं-कहीं तो उपज इतनी कम होती है कि उपज का बीस-पचीस शतांश भाग बोने के लिए रखना पड़ता है। शेष का कुछ भाग खेत व खलियानों में पहुंचकर मांगनेवाले ले जाते हैं। कुछ कारीगरों को, जो कृषकों के औजार बनाते हैं, देना पड़ता है, कुछ निज के उपयोग के लिए कृषक रख लेते हैं और शेष बाजार में बिककर उपभोक्ता के पास

जाता है। उत्पादनकर्ता तथा उपभोक्ता के बीच में कई मध्यस्थ व्यक्ति या कंपनियां होती हैं और जितनी अधिक संख्या इनकी होती है, माल पर कमीशन या दलाली चढ़ती जाती है और माल महंगा होता जाता है। इसका दूसरा अर्थ यह भी होगा कि अधिक मध्यस्थ व्यक्ति होने से कृषकों को कम लाभ होता है। ऐसी स्थिति में मध्यस्थ व्यक्तियों को कम करने का यही उपाय है कि कृषक स्वयं अपना माल मंडी तक ले जायं। यदि माल कम हो तो सहकारिता के सिद्धांतानुसार दो-चार मिलकर ले जायं। ऐसा करने से वाहन-खर्च कम पड़ेगा।

मंडियों में पहुंचने पर माल वैसे ही बिक जाता है या नीलाम होता है और सबसे अधिक बोलीवाला उसे ले जाता है या आड़तियों के यहां डाल दिया जाता है और वे उसे उचित मूल्य पर बेचते रहते हैं। मंडियों में भी कृषकों के ऊपर निम्नलिखित खर्च पड़ता है। चुंगी, तुलाई, पल्लेभराई, हम्माती, चौकीदारी, मेहतर, पक्के आड़तिये के रसोईवाले, पानी पिलाने-वाले, धर्मादा, गौशाला, मंदिर इत्यादि के लिए कुछ देना पड़ता है। फिर भी काफी लाभ रहता है। अपने-अपने माल की स्थिति के अनुसार अपनी मेहनत का फल मिल जाता है।

यदि आर्थिक स्थिति अच्छी हो और संभव हो तो सूखे अनाजों को तो कुछ दिन रखकर ही जब भाव ऊंचा आये तब बेचना चाहिए। बीज या अनाज रखने के कई साधन हैं, जिनका वर्णन पहले हो चुका है। संक्षेप में यहां यह कहा जा सकता है कि थोड़ा माल टीन या मिट्टी के बर्तनों में व अधिक होने पर कोठे, कोठियां, भखारी, खब, और एलेवेटर्स में रखना चाहिए। कीड़ों से बचाने के लिए जहां संभव हो औषधियों का उपयोग भी करना चाहिए।

मक्का के बीज भुट्टों के साथ ही रखने चाहिए। मूंगफली की फलियां रखनी होती है। बीज जल्दी बिगड़ जाते हैं।

तागवाली फसलें

कपास सब-का-सब बेचना पड़ता है और जीनघर (Ginning Facto-

ries) या व्यवसायियों से बिनौले (बीज) खरीदे जाते हैं, जो बोने, पशुओं को खिलाने तथा तेल निकालने के काम आते हैं। सन, अंबाड़ी तथा पाट का तागा निकालकर बेचा जाता है, जिससे रस्से, टाट, पट्टियां, चट्टियां और अनाज रखने के बोरे इत्यादि बनाते हैं। इनके बीज बोने के काम आते हैं।

साग-भाजी तथा फलों की खपत शहरों में ही विशेष होती है सो शहरों के निकटवर्ती स्थानों में इनकी खेती विशेष रूप से होती है और ताजे ही शहरों में भेजे जाते हैं।

सागभाजी तथा फलों की बिक्री पांच प्रकार से की जाती है।

(१) खेतों में खड़ी फसल या बागीचों में फलों की फसल प्रति वर्ष बेचना। इसमें आय कुछ कम होती है, परंतु फसल की रखवाली तथा प्राकृतिक हानियां जो आंधी-तूफान, ओलों आदि से हो जाती है, उससे कृषक बच जाते हैं।

(२) अपनी ओर से माल बाजार तक पहुंचाना व वहां किसी थोकबंद व्यापारी के हाथ बेच देना। इस रीति में फसल की तैयारी तक ठहरना पड़ता है और किन युक्तियों से माल भेजा जाय इसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है ताकि वह अच्छी स्थिति में बाजार तक पहुंच सके।

(३) शहर में अपनी दूकान रखकर अपने व्यक्ति द्वारा माल बिकवाना। इसमें माल की श्रेणियां बनाना होती है और उन्हें खूब सजाकर रखना पड़ता है। इतना ही नहीं बेचनेवाला व्यवहार-कुशल और मधुरभाषी होना चाहिए, ताकि वह ग्राहकों को आकर्षित कर माल बेच ही सके।

(४) सहकारी मंडल द्वारा माल बिकवाना—ऐसे मंडल का सदस्य उत्पादन-कर्त्ता को भी होना चाहिए, ताकि मंडल की समस्त कार्रवाई से जानकारी रहे। ऐसे मंडल द्वारा माल बेचने में कई लाभ हैं। मंडल के पास भाव-राव की पूरी जानकारी रहती है। इससे माल उचित मूल्य पर बिक जाता है। माल बाहर भेजना हुआ तो कम-से-कम खर्चे से भेजा जा सकता है, क्योंकि माल को भेजने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे थोकबंद खरीदी जा सकती हैं। इससे मूल्य कम देना होता है। चालान में

भी खर्च कम पड़ता है, क्योंकि माल के अधिक होने से वह वैगनों और ट्रकों में भेजा जा सकता है।

(५) चलती-फिरती दूकान द्वारा—वर्तमान समय में ग्रामों में भी सागभाजी तथा फलों की उपयोगिता का प्रचार बढ़ रहा है और लोग इनकी उपयोगिता को काफी महत्व दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में मुख्य-मुख्य प्रकार का माल यदि ट्रक या गाड़ियों में अथवा ठेलागाड़ी में भरकर भेजा जावे तो अच्छा लाभ होता है। ग्रामीणों के पास नगदी द्रव्य कम होने से वे अनाज से वे चीजें बदलते हैं सो वेचनेवाले को दोतरफा नफा होता है। एक तो अपने माल पर और दूसरा अनाज पर, क्योकि वह भी कम मूल्य पर ही लिया जाता है।

माल के चालान के साधन

विभिन्न प्रकार का माल कैसे भेजना चाहिए और बिक्री की ओर कैसा ध्यान देना चाहिए इन विषयों की विशेष जानकारी लेखक की 'सागभाजी की खेती' 'फलों की खेती और व्ययसाय' तथा अन्य पुस्तकों में दी गई है। यहां पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि थोड़ा माल टोकरियों में, कपड़े में बांधकर सिर पर या पीठ पर लादकर ले जाते हैं। पहाड़ों पर बहुधा ऐसे ही साधन उपलब्ध होते हैं। मैदानों में बैलगाड़ी, घोड़ा या खच्चर, मोटर ट्रक, और रेलगाड़ी काम में आती हैं। जल-मार्गों में नाव व जहाज तथा हवाई मार्गों में हवाई जहाज भी काम में लाये जाते हैं।

उपर्युक्त साधनों में से भारत में बैलगाड़ी का महत्व बहुत रहा है और रहेगा। खेतों से खलिहानों में और खलिहानों से बाजारों तक माल ले जाने के लिए कृषकों के लिए ऐसी गाड़ी ही अत्यंत उपयोगी वाहन है।

गाड़ियां कई प्रकार की होती हैं। ये इतनी छोटी भी होती हैं कि दो बैल जोतने पर भी उसमें एक ही व्यक्ति घुड़सवार की भांति बैठता है और धुरी पर पांव रखकर बैलों को भगाता जाता है दूसरी ओर ये इतनी बड़ी भी होती हैं कि बीस-पच्चीस मन माल भरा जा सकता है और यदि रबड़ टायर के पहिए हुए तो उपर्युक्त वजन से दुगना भी भरा जा सकता है।

कृषि-संबंधी अन्य पुस्तकें

१. कृषि-ज्ञान-कोष
२. अन्नों की खेती
३. फलों की खेती
४. सागभाजी की खेती
५. तिलहन की खेती
६. दलहन की खेती
७. रोक-फसलों की खेती
८. खाद और उसके उपयोग

सवा रुपया